CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5.5

पाञ्चजन्य का अनुनाद

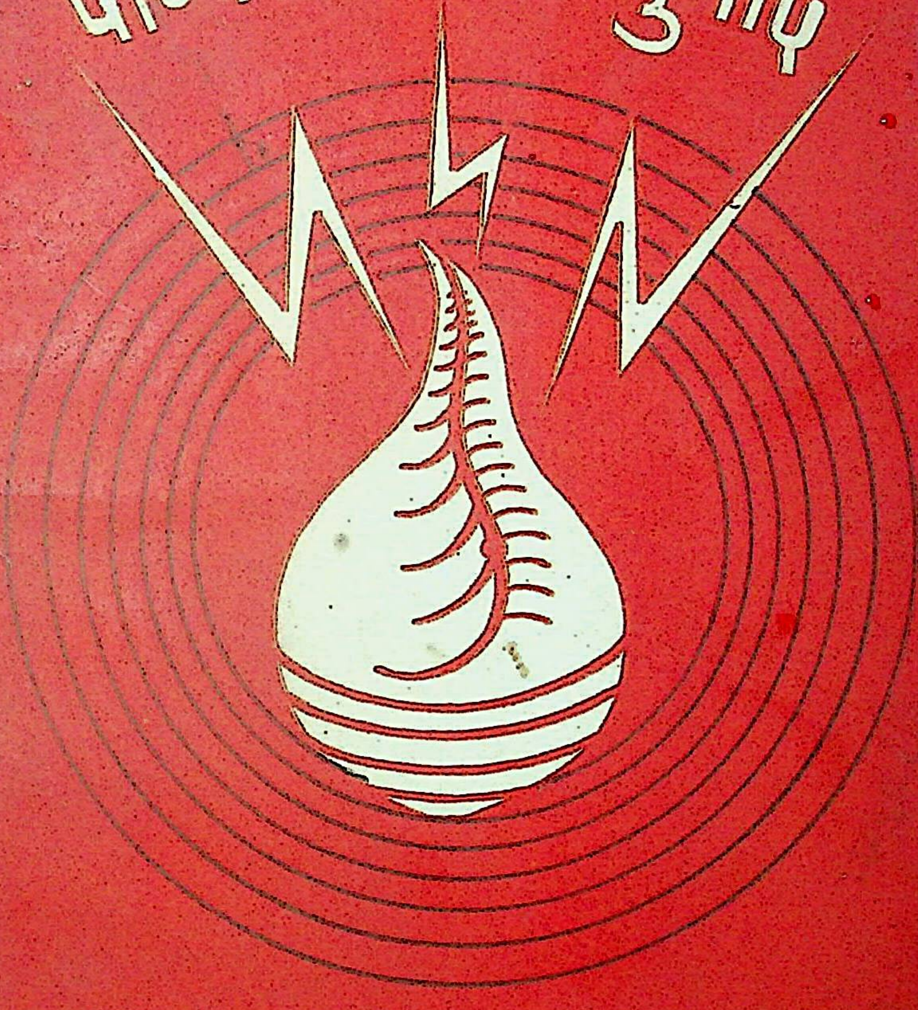

विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ડૉ. ઉર્મિલા બહેન ને સાદર -

કેશવચંદ્ર [illegible]

૨૭।૮।૮૩

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाञ्चजन्य का अनुनाद

सम्पादक

आचार्य केशवचन्द्र मिश्र

मदनमोहन मालवीय शिक्षासंस्थान

भाटपार रानी, देवरिया, उ०प्र०, भारत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :
प्रकाशन-विभाग
मदनमोहन मालवीय शिक्षासंस्थान
भाटपार रानी, देवरिया, उत्तर प्रदेश, भारत

© प्रकाशक

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य : पन्दरह रुपये

मुद्रक :
बैजनाथ प्रसाद
कल्पना प्रेस, रामकटोरा रोड, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनन्तश्रीविभूषित योगिराज देवरहा बाबा

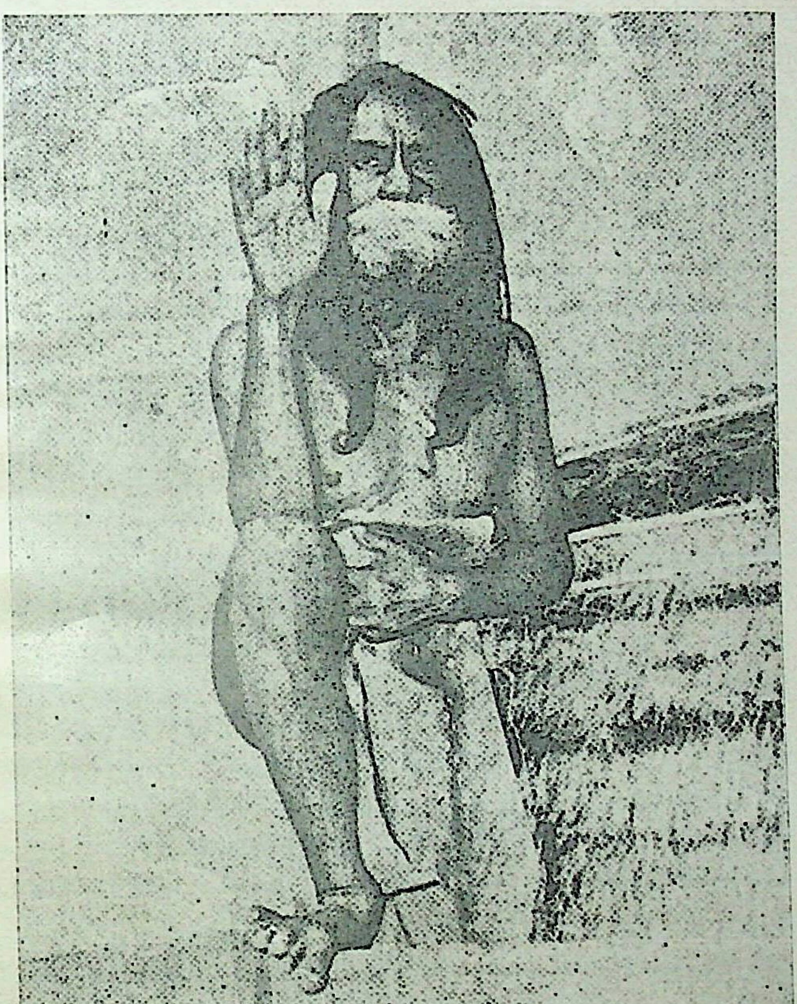

"इस पुस्तक पर हमारा,
बहुत ही असीम दया के साथ,
आशीर्वाद है।"

हरि: ॐ तत्सत योगिराज देवरहा बाबा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आमुख

मदनमोहन मालवीय शिक्षासंस्थान की स्थापना की भावना के प्रेरक तथा उसकी शिला रखने वाले सशक्त मनीषी स्वर्गीय टण्डन जी हैं। प्रारम्भ में ही अध्यात्म-तत्ववेत्ता ब्रह्मर्षि योगिराज देवरहा बाबा के आशीर्वचन प्राप्त करने वाले इस संस्थान का परम सौभाग्य हुआ कि उसे उनका प्रधानसंरक्षकत्व भी प्राप्त हो गया। संस्थान को इस पीयूषदायिनी छाया का सतत एवं अलौकिक पोषण प्राप्त है। करतलगत इस वैभव ने, संस्थान के इस महान् लक्ष्य-पथ को, जिसमें अध्यात्मनिष्ठ और नैतिकताजन्य शिक्षा का पुनःस्थापन किया जाना, वर्तमान शिक्षा की वैधानिक परिस्थितियों में एक प्रयोगशाला बनाना, जीवन और जीविका को भी पारमार्थिक क्रम से जोड़ना और इस प्रकार संस्थान को अध्यात्मप्रधान शिक्षा के एक अन्तर्राष्ट्रीय या विश्वकेन्द्र के रूप में उपस्थित कर मानवमात्र के कल्याण तथा योगक्षेम का मार्ग प्रशस्त करना अभीष्ट है, उसे सदा आलोकित रखा है।

विकट परिस्थितियों में भी उतार-चढ़ाव तथा अवरोधों के बीच चलता हुआ यह संस्थान महत्ता के सोपानों पर एक-एक करके बढ़ रहा है। इसके प्रयोग ठीक उतरते जा रहे हैं। जिन विश्वजनीन उदात्त भावनाओं के व्यावहारिक धरातल की खोज आज विश्व को है और जिनके लिये जगत् के निर्निमेष नेत्र भारत की पुण्य भूमि की ओर लगे हैं, संस्थान उनकी ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है।

भरोसा देने लायक इसकी उपलब्धियों के आधार जितना पार्थिव साधनों और पदार्थगत शक्तियों से नहीं बने हैं, उतना संतो, महात्माओं, आचार्यों, विचारकों और सुचरित जीवन वाले लोक-सेवियों के समागम, सत्संग और विचारों से बने हैं। संस्थान के जीवन में इस पाथेय का जो निर्विकार परिणाम रहा है, उससे संस्थान-परिवार–छात्र, कर्मी, अध्यापक एवं संचालक-वर्ग–लोकधर्मी जीवन की ओर शनैः-शनैः बढ़ रहा है। इस परिवार में, अंचल के भद्र नागरिकों में और पूर्वाञ्चल के शिक्षानुरागियों में इस प्रकार के अनौपचारिक मंगलात्मक लोक-शिक्षण के प्रति गहरी निष्ठा होती जा रही है और रुचि सुसंस्कृत बनती जा रही है। इन प्रयासों के उपस्थापक संस्थान के प्रति सर्वात्मना समर्पित कर्मपुरुष एवं स्वप्नदर्शी मेरे अग्रज श्री बदरीनारायण मिश्र जी रहे हैं।

संस्थान का पिछले कई वर्षों से यह हार्दिक आग्रह रहा है कि विश्वप्रसिद्ध आध्यात्मिक विभूति, भारत के सनातन जीवन की मार्मिक व्याख्यात्री और परमात्मनिष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधिका बहन विमला ठकार जी का शुभागमन यहाँ हो। हम लोग ऋणी हैं प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक भाई श्री अक्षय कुमार जी करण एवं डॉ० रामवचन सिंह जी के, जिनके सहयोग से फरवरी १९८२ में यह आकांक्षा पूरी हुई और संस्थान धन्य बना।

संस्थान में ९ फरवरी से १२ फरवरी तक बहन जी की सन्निधि एवं निर्देशन में "शैक्षिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक ज्ञानयज्ञ" के रूप में एक चतुर्दिवसीय शिविर का आयोजन हुआ। उसमें छात्र, अध्यापक, नागरिक एवं बहनें तो सम्मिलित हुईं ही, प्रदेश तथा पूर्वी जनपदों के विशिष्ट व्यक्ति भी समुपस्थित हुए। प्रत्येक दिन तीन सत्र चले। बहन जी ने, जो संबोधन और प्रवचन किये, वे आचार्यों (अध्यापकों) एवं छात्रों की दो सभाओं, छात्रों एवं अध्यापकों की एक संयुक्त सभा, एक महिला-सभा, मण्डल के प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित अधिकारियों की एक सभा और गांधीनिर्वाण दिवस पर आयोजित एक सभा के रूप में विभक्त थे। इसके अतिरिक्त सायंकालीन प्रार्थना-सभायें भी सत्संग के हेतु प्रतिदिन होती रहीं, जो भक्तिमय एवं गहन विचारों से सराबोर रहती थीं। गोरखपुर विश्वविद्यालय-क्षेत्र के महाविद्यालयों के कतिपय प्रवक्ता एवं प्राचार्यों ने भी इस सुअवसर का लाभ उठाया। इन चार पावन दिवसों में संस्थान-प्रांगण तो दिव्य चेतना से भर ही उठा था, यह प्रमण्डल भी ज्ञान-यज्ञ की सुरभि से सुवासित हो गया था। उसका प्रभाव जनवर्ग पर ऐतिहासिक रूप से पड़ा है। इन प्रवचनों में प्राच्य एवं पाश्चात्य चिंतन-परम्परा का सुदीर्घ अनुभव तथा साधना-प्रसूत, ऋतम्भराकोटिक तपस्या से निःसृत एवं अनिवर्चनीय वैदुष्य मुखर होकर पीयूषधारा के रूप में उपस्थित हुआ है। भारत के साथ-साथ विश्वजनीन समस्याओं की चुनौतियों के समाधान इनमें सार्वभौम रूप से हुए हैं। समष्टि के लिए उनकी—बहन जी की—पवित्र वाणी ने जहाँ हृदयग्राही अन्तर्दृष्टि प्रदान की है, वहाँ कल्याण-मार्ग का एक भ्रांतिरहित बोध भी प्रदान किया है। उनके सदय व्यक्तित्व ने सदा सह-चिंतन को भी सजीव रखा। प्रतीत हो रहा था कि विभूतिमती बहन जी संस्थान-प्रांगण में अपने सूक्ष्म आध्यात्मिक ऐश्वर्य को अविरल विविध रूपों में बरसा रही हैं।

यही पीयूषधारा लक्ष-लक्ष तृषित कण्ठों तक पहुँच कर जागतिक परितापों को दूर करती हुई कर्त्तव्य-कर्मों में समर्पित होने की उनकी भावना को बलिष्ठ कर सके, इसलिए संस्थान के प्रकाशन-विभाग ने उनसे इन प्रवचनों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की अनुमति के लिए अनुरोध किया। बहन जी एवं उनके साधु सचिव-वर्ग ने इसकी स्वीकृति प्रदान कर लोक-सेवा का एक उत्तम अवसर प्रकाशन-विभाग को दिया। फलस्वरूप यह सद्ग्रंथ प्रस्तुत हुआ है, जिसमें मानव के लिए एक अमृतमय पाथेय, कर्मों के सनातन तथा युग-सापेक्ष स्वरूप और समस्याओं के आधारभूत समाधानों के पाञ्चजन्य का निर्घोष और उसका अनुनाद समवेत रूप से हुआ है। इस ग्रंथ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वाध्याय से, मनन से और इसको जीवनधन बनाने से ऊर्ध्वगामी भावनायें सशक्त होंगी और आत्मशांति का प्रकाश उद्भासित होगा, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

इस पवित्र शिविर के आयोजन से लेकर पुस्तक-प्रकाशन तक के विविध कार्यों के सम्पादन में संस्थान के सम्पूर्ण परिवार ने भावनात्मक और क्रियात्मक—किसी न किसी रूप में हाथ बँटाया है। इस हेतु सभी साधुवाद के अधिकारी हैं, फिर भी कृतज्ञता-ज्ञापन के लिये उल्लेखनीय नामों की यहाँ चर्चा अत्यन्त उचित है। सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय, वाराणसी के संस्थापक एवं संचालक श्री वासुदेव द्विवेदी शास्त्री ने चतुर्दिवसीय शिविर को रूपायित करके और ग्रंथ को शीघ्र प्रकाशन के उपकरण देकर गरिमा बढ़ाई है। श्री रामनयन मिश्र एवं श्री राम बड़ाई मिश्र ने ग्रंथ को संग्रथित करने के लिए पृष्ठभूमि देकर मूल्यवान् योगदान दिया है। डॉ० रामायण उपाध्याय ने सम्पादन में महत्त्वपूर्ण सहयोग किया। डॉ० अर्जुन तिवारी ने इसके लिये छतरगढ़ (राजस्थान) एवं प्रयाग में बहन जी के शिविरों में समुपस्थित हो पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण कराया तथा प्रकाशन को सुसाध्य बनाया। डॉ० कपिल देव पाण्डेय, अध्यक्ष संस्कृत-विभाग, आर्य महिला डिग्री कालेज, वाराणसी ने अक्षर-अक्षर सम्पादन करने और प्रेस को अंतिम निर्देश देने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया, जिसके लिये संस्थान उनका सदा आभारी रहेगा। डॉ० व्रजभूषण त्रिपाठी ने सम्पादन तथा प्रकाशन का कार्य विधिवत् किया। श्री प्रमोद चरण दूबे और श्री राम नक्षत्र त्रिपाठी ने ग्रंथ का स्वरूप संवारने में सहयोग दिया। श्री हरि प्रसाद यादव ने सम्पूर्ण ध्वन्यंकन करने एवं लिपिबद्ध करने में भारी श्रम किया। उन्हें इस कार्य में श्री अवनीश चन्द्र मिश्र ने सहयोग किया। डॉ० मानवेन्द्र मिश्र, श्री श्रीराम शुक्ल, श्री वलभद्र पाण्डेय, डॉ० श्रीकृष्णदेव दूबे, श्री रामबसावन पाण्डेय, श्री हरीराम यादव, श्री रतन विहारी मिश्र और श्री कृष्ण नारायण पाण्डेय ने पाण्डुलिपि को मुद्रण-हेतु आलेखित करने में अथक परिश्रम किया। अपने इन सभी बन्धुओं के प्रति भावपूरित आभार प्रकट करता हुआ इस प्रकाशन की सफलता का श्रेय उन्हें सादर भेंट कर मैं आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे ऐसे ही श्रेयःकर्मों में और अधिक तत्परता से अपने श्रमसीकरों को लगाने में सदा प्रवृत्त रहें।

मुद्रण की शीघ्रता और सहयोग के लिए वाराणसी-स्थित 'कल्पना' प्रेस के संचालक श्री बैजनाथ प्रसाद जी बधाई के पात्र हैं।

केशव चन्द्र मिश्र
कुलमुख्य
मदनमोहन मालवीय शिक्षासंस्थान
भाटपार रानी, देवरिया, उ० प्र०,
भारत

दीपावली, सोमवार, संवत् २०३६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहन विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रम

प्रवचन		पृष्ठ
	आमुख	क–ग
प्रथम	स्वाधीन भारत का सत्त्व : अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय	१–९
द्वितीय	भारतीय संस्कृति और ग्रामोन्मुखी मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा	१०–२३
तृतीय	जीवन-लक्ष्यों की प्राप्ति के सोपान	२४–३६
चतुर्थ	राष्ट्र-निर्माण-यज्ञ में दायित्वों का हव्य	३७–४६
पञ्चम	शिक्षा और संश्लिष्ट समाज-रचना	४७–५८
षष्ठ	प्रार्थना : प्रभुसत्ता के साथ निज सत्ता की सम्बन्ध-भावना	५९–६३
सप्तम	भक्तियोग : अद्वैत के अधिष्ठान पर द्वैत का मधुर योग	६४–७१
अष्टम	ध्यानयोग	७२–८३
नवम	प्रश्नोत्तर	८४–९३
दशम	नारा : निराशा में आशा की किरण	९४–१०२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम :

स्वाधीन भारत का सत्त्व : अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय

परमात्मा की असीम कृपा से मैं आप लोगों की इस तपोभूमि में पहुँच सकी हूँ। सात तारीख की सन्ध्या को जब बादल और बिजली-वर्षा के बीच चली, ऐसा लगता था कि भाटपाररानी पहुँच पायेंगे या नहीं ? लेकिन कभी दो घंटे, कभी तीन घंटे गाड़ियाँ लेट होते प्रभु ने यहाँ तक पहुँचा दिया। श्रद्धेय केशवचन्द्रजी की तपस्या के विषय में बराबर सुनती आयी हूँ आचार्य-कुल के कारण। इधर दो वर्षों से भारत में मेरा रहना बहुत कम हुआ है; भारत से बाहर अधिक हुआ है और उत्तर प्रदेश में तो मैं समझती हूँ कि २२ वर्षों बाद मेरा आना हुआ है। मैं तो इस भूमि के दर्शनार्थ आयी हूँ। किस प्रकार तपस्या करते-करते यहाँ संस्थान बना, यह देखने आयी हूँ, कुछ सीखने आयी हूँ, कुछ प्रकाश पाने आयी हूँ। जो कुछ मेरे विषय में कहा गया है, वह तो गुरुजनों की कृपा है, उसके लायक बन सकूँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

आधुनिक भारत के दो महान् ऋषि--एक महामना मालवीय जी और दूसरे महात्मा गाँधी हैं। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'—मन्त्र का दर्शन करने की शक्ति जिनकी प्रज्ञा में हो, वे ऋषि हैं। स्वाधीन भारत का सत्त्व क्या होगा, भारतीय जन-जीवन का आधार क्या होगा, स्वाधीन भारत में मानवीय सम्बन्धों के स्वरूप और आधार क्या होंगे, इन सभी को इन ऋषियों ने दिव्य दृष्टि से देखा। इन दोनों ऋषियों के परम पावन जीवन-दर्शन और उनके समन्वित आदर्श पर यह संस्थान बनाने का पुरुषार्थ आया, ऐसी इसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँच चुकी है।

आज अपना देश एक संकटमय परिस्थिति से गुजर रहा है। अराजकता, स्वच्छन्दता, प्रमाद और भ्रष्टाचार जैसी बीमारियाँ जनमानस में घुस गयी हैं। सारे देश पर मानो पराधीनता, लाचारी, भय-ग्रस्तता और हताशा-निराशा की अन्धकारमयी रात निकल आयी हो। ऐसी एक अन्धकार-भरी रात में यहाँ पहुँचना हुआ है, जहाँ एक प्रकाश की रश्मि देखने में आ रही है। यह तो चार दिन के निवास की केवल उद्घाटन-सभा है, इसलिए इस सभा में व्याख्यान देने का विचार नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बात जरूर कहूँगी कि मैं उस दिन सम्पूर्ण अर्थ में तथा समग्र रीति से आपको स्वाधीन समझूँगी, जब भारत के मानस में भारतीय संस्कृति का सम्पूर्ण स्वीकार होगा। राजनैतिक स्वाधीनता के साथ मानसिक पराधीनता हो, ऐसी एक दयनीय परिस्थिति में पिछले ३५ वर्ष इस देश के गये हैं। भारतवर्ष के जीवन का और भारतीय संस्कृति का, यदि कोई सार है, तो वह है—'तस्माद् योगी भवार्जुन' अर्थात् मानवीय जीवन का प्रयोग है योगावस्था तक पहुँचना।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

यह गम्भीर अवस्था, यह नीरोग दशा ही मनुष्य जीवन का प्रयोजन है। यही इस संस्कृति ने उद्घोष किया है, जिसका निनाद हजारों वर्षों से हमें सुनाई दे रहा है। इस व्याख्या का स्वीकरण एक राष्ट्र के तौर से एवं जनवादी तौर से जब तक नहीं होता कि इस देश में मनुष्य योगावस्था में, किस प्रकार आरूढ़ बनेगा और योगावस्थित होगा, ध्यानावस्थित होकर जियेगा तथा नागरिक के नाते उस भूमिका में रहेगा, तबतक हम स्वाधीन कैसे हैं? जबतक यहाँ यह सिखाया नहीं जाता और इसका संयोजन नहीं होता—वह शिक्षा-संस्थाओं में हो, औद्योगिक संयोजनों में हो अथवा आर्थिक संयोजन में—और जबतक इस राष्ट्र का लक्ष्य यह नहीं बनता, तबतक भारतवर्ष की स्वाधीनता अधूरी है। इनका संयोजन हमें करना है।

लोकतन्त्र का ध्येय हमने सामने रखा, लेकिन लोक का निर्माण करना बाकी है। व्यक्ति का यह अनुमान होना बाकी है, जिससे उसे अपनी अस्मिता का भान हो तथा अपने स्वरूप का कुछ अनुभव हो। मनुष्य पाप में जन्म लेता है, ऐसा हम लोगों ने नहीं कहा है; 'अमृतस्य पुत्राः' कहा है।

आनन्दादेव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्दादेव जातानि जीवन्ति।

आनन्द से उत्पत्ति हुई है विश्व की, ऐसा कहने वाला यहाँ का अध्यात्म है। मैं सारी दुनिया घूम चुकी हूँ; मेरे मित्र! लोकतन्त्रवादी, समाजवादी अथवा साम्यवादी देश हों, गरीब हों, अमीर हों, काले, पीले, गोरे, लाल सभी लोगों के देश मैंने देखे। जिनको आप धर्म-संस्था कहेंगे, उन धर्म-संस्थाओं के अनेक स्वरूप संसार के अन्य देशों में हैं। लेकिन अध्यात्म तो भारत का अपना है ही; इस मिट्टी की उपज है। यह जीवन का एक विज्ञान है; यह जीवन की चरम सत्ता एवं जीवन का चरम सत्य है; यह जीवन की एकता है। जीवन यानी एक अविभाज्य, अखण्डित एवं एक रस समग्र—बस जीवन की यही व्याख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। मनुष्य का स्वरूप केवल हाड़-मांस का पुतला नहीं, विचार-विकार की राशि नहीं, इसका सहज आत्म-स्वरूप है, यह आत्मा और परमात्मा की संहति है। पिण्ड में, जो आत्मरूप और ब्रह्माण्ड में परमात्मरूप व्याप्त है, उसी सत्ता को परमात्मा कहते हैं। इन दोनों के संयोग का रहस्य ज्ञान है।

अध्यात्म इस देश की मिट्टी की अपनी उपज है। इसका स्वरूप कहीं भी किसी भी देश में आपको लेशमात्र भी देखने को नहीं मिलेगा। इसलिए हम गरीब होंगे, भुखमरी होगी और हममें नग्नता भी होगी, उसे हम भूल जायेंगे। लेकिन अपना, जो यह ऐश्वर्य है भव्य-दिव्य विरासत का, उसे हमें छोड़ना नहीं है। उसकी प्रभा और प्रज्ञा के आधार पर ३०-३५ वर्षों का इतिहास एक नगण्य काल-खण्ड है। राष्ट्र का ऐसा नव-निर्माण अभी हमारी प्रतीक्षा में है। हमें वह नव-निर्माण करना है।

पश्चिम से आया हुआ विज्ञान, जिसको आप लोग सायन्स कहते हैं, वह जीवन के सत्य के अन्वेषण करने की पद्धति है। उनके यहाँ पदार्थ-निष्ठ पद्धति है। यह पदार्थ-निरपेक्ष पद्धति है। वहाँ इन्द्रियों की मदद से और पदार्थ के आश्रय से सत्य की खोज है—भले ही वह अहंकार जैसे सूक्ष्म इन्द्रिय क्यों न हो। यहाँ पदार्थ को छोड़कर इन्द्रिय-निरपेक्ष खोज के मार्ग खुले हुए हैं। इसलिए अध्यात्म और विज्ञान दोनों के समन्वय की प्रतीक्षा सारे संसार में है। इतनी अन्धकार-भरी रात में भी इस देश की मिट्टी का कण-कण मुझे पुकार कर कहता है कि इस शताब्दी के अन्त से पहले भारतवर्ष की भूमि पर अध्यात्म और विज्ञान से समन्वित जीवन-दर्शन प्रकट होगा। उसके ही आधार पर समाज-रचना, अर्थ-रचना और राज्य-व्यवस्था करनी है। इसके रहस्य भी यहाँ खोजने हैं।

धन का बल, शस्त्र का बल, राज्य-सत्ता का बल, संख्या का बल, विचार का बल दुनिया आजमा चुकी है पिछले सौ-दो सौ वर्षों में। इन शक्तियों से मनुष्य का आन्तरिक परिवर्तन नहीं हो पाता। इसलिए मानवीय सम्बन्धों में जो बर्बरता है, जो परस्पर भय है, अविश्वास है, वह उससे दूर नहीं हो पाता। मानवीय सम्बन्धों में से भय, द्वेष, अविश्वास का निराकरण नहीं हो पाता, इसीलिए परस्पर शोषण होता है, इसीलिए युद्धों का अन्त नहीं आता। ऐसे एक दुश्चक्र में घूमती हुई दुनिया आज प्रतीक्षा कर रही है तन से, मन से, धन से, शस्त्र से और राज्य-शक्ति से, कि ऊपर क्या कोई शक्ति है? भारत का उत्तर है—'हैं'। वह शक्ति 'आत्मा' है। आत्मा का बल, यानी आत्मतत्त्व का बल जबतक समान परिवर्तन की प्रेरणा नहीं बनता तथा शिक्षा का अधिष्ठान नहीं बनता, तबतक आगे का रास्ता हमें ढूढ़ने को नहीं मिलेगा। भारत के पास बहुत पहले से दिखाया हुआ मार्ग है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधुनिक युग के दो महान् ऋषि हैं—महामना मालवीय जी और महात्मा गाँधी जी। वस्तुतः भारतीय संस्कृति के जीवन में एक सांस्कृतिक नेता थे, तो दूसरे भगवद्भक्त थे। इन दोनों के समृद्ध एवं सामूहिक जीवन-दर्शन से यहाँ का शिक्षा-संस्थान सम्बद्ध है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' विद्यार्थी बनना है। 'विद्या एव अर्थो यस्य स विद्यार्थी।' विद्यार्थी बनकर आना है, तो कौन सी विद्या सीखनी है? नौकरी जिससे मिल सके, डिग्रियाँ जिससे मिल सकें, वही शिक्षा लेनी है? डिग्रियाँ साधन बन सकती हैं जीवननिर्वाह का, लेकिन लक्ष्य नहीं, साध्य नहीं। साध्य है मुक्ति। मुक्ति किससे? हमारी अपनी कमजोरियों से, अपनी खामियों से, अपनी त्रुटियों से। मानवीय जीवन देवत्व की ओर की महायात्रा है। यह मनुष्य की आकृति, जो हमें मिली, बड़ी जटिल है। इस शरीर में गुथा हुआ मन है, गुथे हुए संस्कार पड़े हैं। इसी शरीर को देखें। इसमें पाशविक प्रवृत्तियाँ पड़ी होंगी, पशुता के संस्कार पड़े होंगे। इन सब में एक प्रकार के संस्कार का निर्माण करके देवत्व की ओर यात्रा करने के लिए यह मनुष्य जन्मा है। इसके लिए हमें अपनी कमजोरियों से, अपनी दुर्बलताओं से मुक्ति पानी है। यह कैसे हो?

मुक्ति कोई सिद्धान्त नहीं है। मुक्ति समाज को, इस मनुष्य को, समुदाय को और जीवन को छोड़कर जाने का नाम नहीं है। जीवांश जीवन-पर्यन्त का नाम नहीं है। मानव व्यूह तोड़ने का नाम नहीं है। गुरुदेव के अनुसार मनुष्यों के शत-शत स्नेहमय बन्धनों के बीच भरे मुक्ति के प्रकाश जो हैं, उन बन्धनों के बीच मुझे जीना है। लेकिन अपने को बाँधता क्या है? भीतर की दुर्बलताएँ बाँधती हैं—काम बाँधता है, क्रोध बाँधता है, मद बाँधता है, लोभ बाँधता है। इनको देखें, इनको समझें और इनसे मुक्त होने की युक्ति 'योगः कर्मसु कौशलम्'—विद्या के द्वारा मिले। इसलिए शिक्षा-जैसा सम्पूर्ण क्रान्ति का कोई दूसरा माध्यम नहीं है।

जो क्रान्ति विधायक होगी, वही सम्पूर्ण हो सकती है। वही क्रान्ति समग्र हो सकती है, जिसमें सख्य, सहयोग, समाधि, ये मूल्य होंगे। शिक्षा-संस्था से बड़ी आशा बनती है क्योंकि वहाँ मनुष्य को प्राकृत से सुसंस्कृत बनाने की युक्तियाँ हैं। वे इतिहास पढ़ायें, भूगोल पढ़ायें, अर्थशास्त्र सिखायें अथवा गणित हो, ज्योतिष हो, आयुर्वेद हो, सबका लक्ष्य है कि मनुष्य अपने स्वरूप को पहचानकर एवं अपने संस्कारों के बन्धनों को पहचानकर आत्मसाक्षात्कार करता हुआ समाज का घटक बनने के लिए समर्थ बने।

युवा स्यात् साधु युवा ध्यायकः आशिष्ठो बलिष्ठः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलिष्ठ—प्रकृष्ट—ऐसे आत्मबल से सम्पन्न हों। ऐसा नहीं कि मन में कोई शक्ति न हो। जरा कुछ हुआ कि मन विक्षुब्ध हुआ और चित्त विक्षिप्त। जरा आराम, जरा दुःख सहन नहीं होता, जरा कष्ट सहन नहीं होता। आज के विद्यालयों, महाविद्यालयों में से जिन बन्धुओं को हम निकाल रहे हैं, वे हमारे साथ दस-दस साल हमारे बीच रहते हैं। किन्तु न तन में बल, न मन में बल, न बुद्धि में आत्मविश्वास। इस प्रकार से हम बच्चों को निकाल रहे हैं, विद्यालयों में से, महाविद्यालयों में से। एक-एक डिग्री का कागज उनके हाथ में पड़ा हुआ है। जीवन निर्वाह कैसे बन सके ? जीवन जीने की भीतरी शक्ति, भीतरी सामर्थ्य देनेवाली विद्या इन अन्ध विद्यालयों, महाविद्यालयों में मिलती नहीं है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है, नितान्त प्रसन्नता है कि ग्रामीण अंचल में आपका यह सारा विद्या-संस्थान तपश्चर्या है। मेरा बस चले तो जो तथाकथित विश्वविद्यालय हैं, उन सबको उठाकर ग्रामीण अंचल में रख दूँ ताकि गाँव से आनेवाले बच्चों को, विद्यार्थियों को ग्रामीण अंचल में रहने का, धरती के पास, धरती के साथ रहने का अवसर मिले। दम घुटता है, शहरों में बसी हुई यूनिवर्सिटियों में जब जाना होता है, दम घुटता है वहाँ के वातावरण से। वहाँ का सारा वातावरण, १८४२ में लार्ड मैकाले का पैदा किया हुआ अनुराग, वह बासी-बासी सा लगता है, बासी का जीवन लगता है, ताजगी उसमें है नहीं। वहाँ शिक्षक और विद्यार्थी के बीच जो सम्बन्ध है, वह भी भारतीय संस्कृति से विसंगत-सा लगता है, जीवन-शैली विसंगत लगती है।

भारत गाँवों में बसता है, गाँवों में बसेगा, तो ग्रामीण अंचलों में ही हों विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय। अपनी धरती से, अपने गाँव से दूर न हों। गाँव के साथ जो बड़े शहर हैं, जिनका सम्बन्ध सहयोग का, संख्य का या संघर्ष का है, वे गाँव का पोषण कम कर पाते हैं, उनसे शोषण अधिक हो जाता है। ऐसे शहरों में विश्वविद्यालयों में जाकर जो बच्चे बैठते हैं, वे भूल जाते हैं धरती को; भूल जाते हैं कृषि को, खेती को; भूल जाते हैं गाय-बैल को। यह ऋषि-संस्कृति, कृषि-संस्कृति का देश है। इसको उठाकर कृत्रिम वातावरण में ले जाया जाता है, कि आँसू आ जाता है।

फिर यहाँ सुबह जब मैं आयी हूँ, प्रसन्नता हुई है। मुझको लगा कि ठीक है, अध्यात्म-प्रधान शिक्षा देने के लिए यह स्थान अनुकूल है। प्राचार्य जी की पुनीत वाणी सुनी तथा शास्त्रीजी के बचन सुने तो लगा कि यहाँ भारतीय संस्कृति जो भव्य-दिव्य विरासत छोड़ गयी है, उससे बिछुड़ा हुआ यह स्थान नहीं है, उससे जुड़ा हुआ स्थान है। प्रसन्नता और उमड़ पड़ी है, निखर उठी है जब इसी मंच पर जिलाधिकारी को भी मैंने देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी भी देश को सुचारु रूप से चलाने के लिए शासक-वर्ग है, कर्मचारी-वर्ग है, जनता है, जनता के प्रतिनिधि हैं। इन चारों में सहयोग हो, सख्य हो, तालमेल हो, तब देश सुचारु रूप से चलता है। ये हमारे बीच आकर बैठे हैं। मेरी गाड़ी के आने में विलम्ब होने से आप सबको कितना कष्ट हुआ होगा, इसकी कल्पना कर सकती हूं। लेकिन जो भी यहाँ आकर बैठे हैं, आशा करती हूं, उनके साथ हम सब बैठकर राष्ट्र का नव-निर्माण, जो बाकी है, सपने जो अधूरे हैं, महामना मालवीय जी के और महात्मा गाँधी जी के भी, उन पर विचारें। उन सपनों को पूरा करने की जिम्मेदारी आपके, मेरे कमजोर कन्धों पर आ पड़ा है, लेकिन जो जीवन से हार माने, वह लब्धनिष्ठ व्यक्ति नहीं।

कर्म को जीवन की साधना का पवित्र क्षेत्र मान करके हम निकल पड़ें। जो अधूरे सपने हैं, उनको पूरा करने का व्रत लें। इस प्रकार के व्रत स्वाधीनता से पहले लोगों ने लिए होंगे। १८५७ में जो स्वाधीनता का संग्राम हुआ है, तब से लेकर १९४७ तक लोगों ने लिए होंगे। इस राष्ट्र के कोने-कोने में उस समय एक ही आकांक्षा गगन में निनादित होती होगी—राष्ट्र को स्वाधीन बनाने की। आज राष्ट्र एवं जगत् को निनादित करने की अनिवार्यता की आवश्यकता लोगों में नहीं है। जो सपने अधूरे रह गये हैं स्वराज्य के, उनके प्रति अध्यात्म के अधिष्ठान को लेकर ही स्वराज्य होगा। जबतक यह अधिष्ठान नहीं होता, तब तक उस व्रत की अनिवार्यता नहीं हो सकती। अतः इस तथ्य का लोगों को ख्याल हो, इसका भान हो कि संकट है राष्ट्र में। इसलिए अध्यात्म-आधारित होगा यहाँ का सम्पूर्ण जीवन।

विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी

सुकरात को विष दिया गया। जेसस क्राइस्ट सच्चाई की बात सिखाने लगे और उन्होंने कहा कि 'अपने पड़ोसी को प्यार करो', तो सत्ताधीशों को असुविधा होने लगी। उन लोगों ने उन्हें शूली पर चढ़ा दिया। महात्मा गाँधी को गोली दागी गयी। वास्तविकता यह है कि शरीर रहते हुए गाँधी जितने समर्थ नहीं थे, उतने वे अब हैं। परन्तु अपने आदेशों, उपदेशों के बल पर अधिक शक्तिशाली प्रतीत हो रहे हैं। मार्टिन लूथर किंग ने गाँधी जी को गुरु माना। मार्क्स के बाद वे ही एकमात्र राजनेता हुए। गाँधी को सन्त, भक्त, कर्मयोगी, संन्यासी, क्रांतिकारी और धर्म-प्राण, जो भी चाहें, कह सकते हैं।

आप को मालूम होगा कि मैं तो चेकोस्लोवाकिया गयी, जर्मनी गयी और फ्रांस गयी। चेकोस्लोवाकिया की जनता ने अत्यन्त आदर दिया। वे बोले—आप तो गाँधी जी के देश से आयी हैं। गाँधी जी तो बहुत आदर-योग्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे एक बहुत घनिष्ठ मित्र थे, जिनका गाँधी जी भी बहुत आदर करते थे। तो हमें यह कहना है कि वसुन्धरा हमेशा ऐसे व्यक्तियों को जन्म देती है, जो देश को, समाज को, नयी दिशा देते हैं। इन्हीं लोगों में से लोग महात्माओं की जीवनी पढ़ेंगे, सन्देश पढ़ेंगे तथा इतिहास पढ़ेंगे और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनके विचार ले जायेंगे। फलस्वरूप कोई इन्जीनियर बनेगा, कोई साधु बनेगा, कोई संन्यासी बनेगा एवं कोई महात्मा बनेगा। नास्तिक बनेंगे तथा आस्तिक भी बनेंगे। किसी भी देश के लिए यह बात सत्य है। हमें महात्माओं के दर्शन करना, उनका सत्संग करना और उनके आचरणों का पालन करना भूलना नहीं चाहिए।

ईश्वर क्या है, आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, यह सब मैं नहीं जानती। बहुत पहले की बात है कि एक जैन आत्मसाक्षात्कार के लिए एक महात्मा के पास गये और पास में खड़े हुए। उनको जवाब मिला और वहीं से उन्हें क्षमता प्राप्त हुई कुछ करने की। तो परमात्मा ने बहुत कुछ दिया है इसी भारतवर्ष में। यदि आप से कोई पूछे कि समाज कैसा हो, तो आप कहेंगे कि समाज सत्यप्रधान हो। जीवन के विभिन्न आयाम हैं। हम तो परमात्मा की शान्ति को ढूँढ़ रहे हैं, जिससे हम सत्यनिष्ठ समाज की संरचना कर सकें। यदि हमारे अन्दर ईश्वर के प्रति प्रेम हो तथा विश्वास हो, तो हमें चाहिए कि विभिन्न प्रार्थना-सभाएँ करें, प्राणायाम करें। गाँधी जी ने अपने सामाजिक-राजनैतिक जीवन में सभी गुणों को एक आदर्श के रूप में उतार दिया। राष्ट्र ही नहीं अपितु पूरे विश्व को उन्होंने एक नई दिशा दी। आप उसी देश के वासी हैं, उसी अन्न-जल का सेवन करते हैं!

खोजिए तो गांधी जैसा कोई भी स्वाधीनता के बाद नहीं मिलता। स्वाधीनता के पूर्व ही उन्होंने गाँवों की स्वाधीनता की बात की और कहा—यदि गाँव स्वाधीन हो जाते हैं, तो समझो देश स्वाधीन। जीवन एक साधन मात्र है। शक्ति देना तो स्वाभिमान का कार्य है। घर के सामने मंदिर बनवा लेना ही ईश्वर-भक्ति नहीं है। वे कहते थे—सत्यनिष्ठा और अहिंसा के रास्ते पर चलिए और भारत की स्वाधीनता प्राप्त करेंगे। भारत-देश जैसा है, उसमें यदि इसकी स्वाधीनता असत्य से, हिंसा से मिलती है, तो हमें नहीं चाहिए। यह प्रक्रिया बहुत ही नाजुक होती है। यह एक पर्व है और यह राष्ट्रसाधना बहुत ही मुश्किल है। आप कहेंगे कि भाई, यह तो व्यवहार में हो नहीं सकता। आप यह भी कहेंगे कि भाई, यह तो अव्यावहारिक आदमी है। प्रतिकार प्रतिकार के लिए नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतिकार होना चाहिए, जो अन्याय के विरुद्ध हो। ऐसे प्रतिकार की प्रतिक्रिया यह होगी कि जिसके खिलाफ प्रतिकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो रहा है, वह भी उससे ऊँचा उठेगा। अतः किस प्रकार की समाज-व्यवस्था होगी तथा किस प्रकार की राजव्यवस्था होगी, इसकी नींव उपर्युक्त ढंग से डालनी होगी। यह कृषि-आधारित होगी। ग्रामीण लोगों और देश की प्रगति होगी। कृषि और कृषक इस देश के अर्थतन्त्र के मेरुदण्ड के समान होंगे। गाँव स्वाधीन बनेंगे। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच जितने मध्यवर्ती होंगे, सब हटते चले जायेंगे।

रामराज्य की बात, ग्राम-स्वराज्य की बात तथा हिन्द-स्वराज्य की बात पूरी तरह से आपके सामने का यह प्रसङ्ग नहीं है, लेकिन यदि शोषण-मुक्त समाज बनाना है, तो उत्पादन के साधन उत्पादकों के हाथ में किस प्रकार होने चाहिए तथा औद्योगिक शक्ति का किस प्रकार विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, देखना होगा। यन्त्र और यन्त्र-विज्ञान मनुष्य-बल और पशु-बल के पूरक बनकर किस प्रकार से होने चाहिए, यह सारा गाँधीजी ने खोज लिया था। उन्होंने हम लोगों के लिए गुलाब के पुष्प बिखेर दिये। सारे देश भर में एक जाल बिछा दिया और एक रचना प्रसारित की संस्थाओं की, जिनको उन्होंने आश्रम कहा। एक तरफ से उन्होंने शोषण-मुक्त समाज के लिए विधायक परिवर्तन का मार्ग दिखाया और दूसरी तरफ उन्होंने कहा कि यदि शोषण-मुक्त समाज बनाने हैं, तो नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी है, ताकि मनुष्य अपने भाइयों के साथ भाई-चारे के साथ जी सके। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा था—मनुष्य के नाते धरती पर दूसरे मनुष्यों के साथ मानवीय सम्बन्धों को कैसे जिएँ, इतना ही मनुष्य नहीं जानता है। आकाश में उड़ना भी जानता है, सागर में गोते लगाना जानता है, चाँद पर उतरना जानता है, कृत्रिम मस्तिष्क (कम्प्यूटर ब्रेन) बनाना जानता है, लेकिन अपने मस्तिष्क का ठीक उपयोग करना नहीं जानता।

गांधीजी ने शोषणमुक्त समाज बनाने के लिए क्रान्तिकारी जीवन-दर्शन, जिसमें अर्थशास्त्र तथा अर्थतन्त्र आ गये, रखा था। भारत की जो बुनियाद है, उसे पोख्ता बनाने के उपाय हमारे सामने उन्होंने रखे। दूसरी तरफ उन्होंने एक बहुत बड़ी क्रान्ति, जिसका हमें आज ख्याल नहीं है, रखी। हम उनके बहुत नजदीक हैं, इसलिए हम महानता को देख नहीं पा रहे हैं। हमें उनके वारिस और शिष्य होने का मन में घमंड है, इसलिए हम उनको देख नहीं पाते तथा समझ नहीं पाते हैं। किसी ने कहा है कि महापुरुषों को उनकी महानता की सजा क्या दें, जब नियति के ध्यान में यह नहीं सूझा, तब उसने उनको शिष्य-समुदाय दिया। यह एक बहुत गहरी और पैनी चोट करनेवाली बात किसी ने लिखी है। वह हम पर अच्छी तरह से लागू होती है। तात्पर्य यह है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि ३०–३५ वर्षों पूर्व से बापू ने, जो दूसरी क्रान्ति की, वह क्रान्ति की प्रक्रिया में क्रान्ति थी। आज उस रूप में गाँधी इस पृथ्वी पर हैं।

मैं महामना मालवीय के शिक्षा-संस्थान में बैठी हूँ। मालवीय जी का और महात्मा गाँधी का जीवन दर्शन, उनका समन्वय और उनके समन्वित जीवन-दर्शन भी समझना है। जीवन-दर्शन जहाँ समन्वित होते हैं, वहाँ ऐसा ही होता है, जो इस संस्थान में कायम करने का कार्य हो रहा है। इस संस्थान में बैठकर मैं बोल रही हूँ; यह मेरा अहोभाग्य है। बड़ा शुभ अवसर है, ऐसा मेरा हृदय कहता है। गाँधीजी ने, जो दूसरी प्रक्रिया की, मनुष्य को ऊँचा उठानेवाली, वह समझने की बात है। उनसे पहले यह माना जाता था कि समाज-परिवर्तन सत्ता के हस्तान्तरण या सत्ता के परिवर्तन या आर्थिक परिवर्तन से करते समय इसमें सात्त्विक तरीका नहीं अपनाया जा सकता है, परन्तु गाँधीजी ने दिखला दिया है कि ऐसी कोई बात नहीं है।

चार दिनों में आपके साथ मेरा संवाद होगा। 'अध्यात्म' शब्द से कोई दकियानूसी चीज आपके ख्याल में, आपकी नजर में न आये। विज्ञान-समन्वित होगा अध्यात्म। बुद्धि भी होगी अध्यात्म में। जैसे गणित है, भौतिकी या पदार्थ-विज्ञान है, वैसे ही अध्यात्म में जीवन का विज्ञान है। इसमें कोई जगह नहीं है कल्पना के विकास के लिए तथा प्राणी के अहंकार के लिए। यहाँ ठोस सत्य है। अध्यात्म जीवन का प्रयोगगम्य शास्त्र है; प्रयोगगम्य विज्ञान है। अतएव ऐसे सपने, अधूरे सपने पूरे करने का जो संकल्प यहाँ संस्थान के लोग करके बैठे हैं और जिनके चित्त में वह संचित है, उनके चित्त में भी वही अभीप्सा जग उठे।

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय :

भारतीय संस्कृति और ग्रामोन्मुखी मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा

बहनों, भाइयों और मेरे अत्यन्त प्रिय बच्चों! मुझे प्रसन्नता है कि गोष्ठी में पहली सभा विद्यार्थियों की है। मेरा पढ़ना अभी छूटा नहीं है, इसलिए मैं अपने आपको भी विद्यार्थी मानती हूं। ऐसे विद्यार्थी-समाज के बीच में बैठना मुझे बड़ा सुखद लगता है। विद्या जिसका इष्ट है, उसका सीखना कभी बन्द नहीं होता। वह विद्यार्थी है, जो कभी सिद्धान्तों पर अड़ता नहीं और मुसीबतों से हारता नहीं; भूतकाल के भरोसे सोता नहीं और भविष्य के सपनों में खो नहीं जाता। लेकिन वर्तमान के प्रति ध्यानस्थ होकर देखता है, क्योंकि 'ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा', यह केवल देवत्व के परिचय के लिए ही आवश्यक नहीं है।

जीवन जीना एक ऐसा पावन और दिव्य कर्म है, जिसके लिए मनुष्य को ध्यानावस्थित रहना पड़ता है। भूतकाल के पिजड़े में बन्द न हों, भविष्य के सपनों मे खो न जायँ और वर्तमान मुट्ठी से बिछुड़ न जाय। इसके लिए सावधान रहना पड़ता है। मैं आशा करती हूँ कि आप और हम दोनों सावधान होकर सुनेंगे।

जीवन में अपने सामने तीन प्रकार के सम्बन्ध हैं। मैं शिक्षा-संस्थान में बैठी हूँ, इसलिए आशा करती हूँ कि संक्षेप में बोलूँ और कुछ संकेत में ही बोलूँ, तो मेरा आपका सम्बन्ध पर्याप्त रूप से विशद हो जायेगा। तीन प्रकार के सम्बन्ध हैं, एक तो है जागतिक सम्बन्ध, दूसरा है राष्ट्रीय सम्बन्ध और तीसरा है जिस गाँव में जन्म हुआ है, जिसमें हम रहते हैं, उस ग्रामीण जीवन का सन्दर्भ। पहले बड़े सन्दर्भों को देख लें। आज के जो नवयुवक हैं, उनके लिए जीवन का जितना लोमहर्षक सन्दर्भ उपलब्ध है, उतना शायद ही कभी रहा हो। लोमहर्षक इसलिए कह रही हूँ कि संसार के सभी देशों में जितनी पुरानी विचार-अवस्थायें और विचार-परम्परायें रही हैं, वे कुछ असंगत सी बनती चली जा रही हैं आज की जिन्दगी के लिए तथा आज के सवाल हल करने के लिए। अमेरिका हो, पश्चिम यूरोप के देश हों, पूर्व यूरोप के देश हों, मध्य-एशिया हो, मध्य-पूर्व एशिया या भारतवर्ष या चीन हो, जापान हो, सभी ओर पुरानी पद्धतियाँ, पुरानी परम्परायें ढहती चली जा रही हैं। इस समस्या का विस्तार ता अभी करना आवश्यक नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकतन्त्र के पाँव, जो लड़खड़ा रहे हैं अमेरिका में, इङ्गलैण्ड में या अन्य लोकतांत्रिक देशों में, इसके बड़े गम्भीर कारण हैं। जीवन की मान्यतायें जो आधारित थीं दो सौ वर्ष पहले, सौ वर्ष पहले के सिद्धान्तों पर आर्थिक, राजनैतिक एवं विज्ञान के, अणु-विज्ञान के सम्बन्ध में, मनोविज्ञान के सम्बन्ध में, वे सारी की सारी ढहती चली आ रही हैं। एक बहुत बड़ी नैतिक चुनौती है। वे मनुष्य-चेतना के सागर पर टकराती जा रही हैं। नयी खोज है नयी दिशाओं की तथा पगडंडियों की। अमेरिका, कनाडा, आयरलैण्ड में मेरा घूमना हुआ। लगभग पिछले बारह वर्षों में सात-आठ बार उन देशों में जाना हुआ है। वहाँ युवक असन्तुष्ट हैं। वहाँ कितनी आजादी है, कितनी सम्पन्नता है? उसकी कल्पना हम यहाँ पर गाँवों में बैठकर नहीं कर सकते। तो फिर वे दुःखी क्यों हैं? वे असन्तुष्ट क्यों हैं? इसलिए कि वहाँ मनुष्य से मनुष्य के नाते, व्यक्ति से व्यक्ति के नाते की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। प्रतिष्ठा वहाँ जन्म की हो गई है और मनुष्य खो गया है। इसलिए मनुष्यता के जो मूल्य हैं, वे भी खो गये हैं।

अर्थनीति, यन्त्र-विज्ञान, अणु-विज्ञान, राजनैतिक सत्ता के विस्तार और जनता के नाम पर जो कुछ वहाँ किया गया है, उसको वहाँ लोग जान गये हैं। इसलिए विद्रोह करते चले जा रहे हैं। बीस वर्षों में न जाने कितने विद्रोह किये गये, कितनी ठोकरें खायीं और भूलें हुईं। लेकिन नये प्रयोग करते और छोड़ते चले जा रहे हैं। वे कभी 'एथेइस्ट' बने, 'हिप्पीज' बने, 'बेकिन्स' बने। कभी वे नारियों के पीछे दौड़े तथा कभी तत्त्व-योग के। वे खो गये हैं, दौड़ रहे हैं कभी 'हरिकृष्ण' के पीछे, ओ३म् के पीछे और कभी वेदान्त के 'एसोशियेसनों' के पीछे। अभी-अभी तो उनको चस्का लगा है जैनधर्म के मूल ग्रन्थों को देखने का। बहुत बड़ा 'रिसर्च इन्स्टीट्यूट' न्यूयार्क में, जहाँ जैन साधुओं का अड्डा है, बन रहा है। वहाँ सान्दीपनि महाविद्यालय भी है। इसके लिए केलीफोर्निया में ३६० एकड़ जमीन भी है। अमेरिका के नवयुवक संस्कृत-भाषा के अध्ययन में लगे हुए हैं। ऐसे उदाहरण देने मैं जाऊँ, तो अधिक विस्तार हो जायेगा। वे कहते हैं कि हमारी संस्कृति छोटे-छोटे गाँवों की हो। बड़े भीमकाय, अमानुष शहर में हमें रहना नहीं है। ऐसे लोगों का परिवार बिछुड़ चुका है और वे ऊब चुके हैं।

परिवार और समाज की इकाई हमारे यहाँ आज भी है, लेकिन वहाँ नहीं है। वे परिवारों में वापस जाना चाहते हैं, कहते भी हैं—हम लोग मानव-सम्बन्धों को भूल चुके हैं। इसलिए वे खोज रहे हैं कि कहाँ मनुष्य-मनुष्य के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीच सम्बन्ध होगा और पापों से कैसे हमारा पीछा छूटेगा ? सुबह से शाम तक यह रूप देखते देखते वे अन्धे हो गये हैं; चुप हो गये हैं; बधिर हो गये हैं।

एक दूसरा सन्दर्भ है आपके सामने—भ्रष्टाचार का और नैतिक मूल्यों का। भारतीय अदब की बात आपके सामने रखनी नहीं है। नैतिक मूल्यों का ह्रास वहाँ अवश्यम्भावी है, जहाँ मनुष्य का मनुष्य के नाते अस्तित्व नहीं है। जहाँ मनुष्य का मनुष्य के नाते पवित्रता या गरिमा-गौरव नहीं है, वहाँ मानवीय मूल्य ठहर ही नहीं सकते। फिर वहाँ मनुष्य की प्रतिष्ठा लोकतन्त्रवादी व्यवस्था के आधार से नहीं बन सकती। कारण जो भी हों, लेकिन वहाँ मनुष्य की प्रतिष्ठा नहीं है; व्यक्ति का अविग्रहण और व्यक्ति की स्वाधीनता नहीं है। अस्तु, वहाँ व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं रहता, यह संदर्भ मैंने आपके सामने रखा।

इसी संदर्भ में स्वीटजरलैण्ड, स्वीडेन, नीदरलैण्ड तथा आस्ट्रेलिया में 'न्यू एज़ कांशसनेस' का आंदोलन मैंने युवकों में खड़ा किया है। वहाँ शहर छोड़कर बड़े-बडे गाँव बनाये जा रहे हैं। घर-बार छोड़कर वहाँ जाकर लोग रहते हैं। एक नया सामुदायिक जीवन विकसित करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। जिस संस्कृति और सभ्यता में पिछले ५० वर्षों में युद्धों को रोकने की शक्ति नहीं आयी और राजनैतिक संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें सुलझाने की शक्ति नहीं आयी, उस अवस्था से युवक सावधान हो गये हैं। यह कुछ लोगों की खामी है, जिसको हटाना पड़ेगा।

वहाँ की रुपये-सम्बन्धी मान्यता का उल्लेख मैंने आज प्रभात के समय उद्घाटन की सभा में किया था, पिछले सौ वर्षों में जिन शक्तियों का मनुष्य-जाति को बहुत भरोसा था कि पैसे के बल से क्या नहीं हो सकता और शस्त्रास्त्र के बल से क्या नहीं हो सकता, उसका वह अधूरा स्वप्न तथा उसकी अंगीभूत कमजोरियाँ पश्चिमी देशों के ध्यान में आ गयी हैं। मैं उन दिनों अमेरिका में थी, जब ईरान में सौ लड़कों ने उनके राजदूतावास में से उनको पकड़ लिया। छः महीने, आठ महीने, नौ महीने, ग्यारह महीने बीत गये। सबसे सम्पन्न राष्ट्र, सबसे शक्तिशाली राष्ट्र अपने आदमियों को छुड़ा नहीं पाया। जब संयुक्त राष्ट्र के वाल्डयूम साहब गये, तो लड़कों ने उनसे मिलना तक मन्जूर नहीं किया। संयुक्तराष्ट्रसंघ की शक्ति हिल गयी। वियतनाम हो, कोरिया हो या ईरान का मसला हो अथवा इजरायल, अल्जीरिया का विषय हो, देख लिया कि कितने शस्त्रास्त्र हैं। शस्त्रास्त्रों की शक्ति से अन्तर्राष्ट्रीय मसले हल नहीं हो सकते और पैसे के बल पर भी हल नहीं हो सकते। पैसे के बल पर खरीद-खरीद कर कोरिया और वियतनाम में न जाने कितने लोग प्रयोग कर चुके, लेकिन सफल नहीं हो पाये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक तीसरी आजमाइश इन १०० वर्षों में विचार की गई। समाजवादी देशों में जितना पैसों पर जोर नहीं दिया गया उतना वैचारिक परिवर्तन पर दिया गया; वैचारिक तैयारी पर दिया गया। सामान्य जन पर भी इसका प्रयोग किया गया। सोचा गया—उनमें नये-नये विचार ठूंस देंगे, समझा देंगे। कैसे-कैसे भव्य-दिव्य विचार? उन विचारों के मुकाबले में आज कोई और भौतिक विचार मिलेगा नहीं। वे विचार हैं किसी समाज परिवर्तन के लिए। गरीबी-अमीरी को हटाना है, शोषण की जड़ें उखाड़कर फेंक देनी हैं और सारे संसार में भ्रातृभाव को लहराना है। राज्य नाम की संस्था का लोप हो जाना है। कैसे अजीब होंगे महर्षि मार्क्स जिन्होंने यह विचारों का सपना देखा। इस प्रकार विचार के भरोसे यह सब सोचा गया था, लेकिन विचार की शक्ति भी अधूरी पड़ी है। समाजवादी देशों में आप देखते होंगे, किस प्रकार के झगड़े हैं—चीन-रूस के बीच। क्या उनके कारण हैं? एक दूसरे को संशोधनवादी कहता है, दूसरा पहले को। अस्तु, विचारों के आधार पर भी बदले मनुष्य के संस्कारों को हम बदल न सके।

मनुष्य में जो संस्कार पड़े हैं प्रभुत्व तथा स्वामित्व की आकांक्षा के, उसका एक विश्लेषण है। उसको हम नहीं निकाल पाये। आप लोग कालेजों में पढ़ने वाले हैं। जरूर पढ़ियेगा, कॉम्रेड जिलरस की किताब है—'दी मैनेजेरियल क्लास'। १९५९–६० की बात है, जब जयप्रकाश जी ने हमें युगोस्लाविया भेजा था। उद्देश्य था उद्योगों में मजदूरों की व्यवस्था और उसके विकेन्द्रीकरण का अध्ययन। मैंने पाया कि वहाँ बहुत सारे प्रयोग करके देखे गये हैं, किन्तु विचारों का बल कम पड़ा।

विचारों को सींचा जा सकता है। ज्ञान से अज्ञान का निराकरण हो सकता है, लेकिन मोह, जो चित्त में पड़ा हुआ है और अवचेतन में, जो संस्कारों की गति पड़ी है, संस्कारों का बल घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। इसीलिए योरोप, अमेरिका और विश्व के अन्य साम्यवादी देश अब खोज कर रहे हैं कि मन और बुद्धि के परे भी कोई शक्ति है। विचार के आगे भी कोई शक्ति है, जो मनुष्य के आन्तरिक कलह, भेद आदि जान सके। आप ने नाम सुना होगा, एक बल्गारिया देश है। बल्गारिया में आज किसी ग्रन्थ की पूजा होती है तो वह है 'पातञ्जल योग'। 'दी पेडागाजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' में वे रिसर्च कर रहे हैं कि योग-सूत्रों के आधार पर शिक्षक, शिक्षा के क्रम, पद्धति और प्रक्रिया में क्या परिवर्तन किया जा सकता है। रूस में यदि सबसे लोकप्रिय कोई संस्था है, तो वह आध्यात्मिक खोज (साइकिक रिसर्च) की है। उसके बड़े-बड़े विभाग हैं। रूमानिया, बल्गारिया, रूस और युगोस्लाविया में इसके विभाग बने हैं। मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बुद्धि के परे जो आत्मा के आयाम हैं, उस परा चेतना में कौन सी शक्तियां छिपी हैं ?

मेरे मित्रों, मुझे संक्षेप में कहना है। संक्षेप में यह कहना चाहती हूं कि जागतिक परिस्थिति में आज दुनिया यहाँ तक पहुँची है कि विचारों से आदमी का सत्त्व नहीं बदला जा सकता। धन और शस्त्र से मनुष्य के जिस्म को बदला जा सकता है, उसकी गर्दन उड़ायी जा सकती हैं, लेकिन उसका सत्त्व, उसका शील नहीं बदला जा सकता। आज दुनिया जिस मुकाम पर खड़ी है जबकि आप यौवन में आये हैं, उस समय राष्ट्र के सम्बन्ध क्या हैं राष्ट्र और शिक्षा-संस्था के संदर्भ में ? उसका उल्लेख करना मुझे महत्वपूर्ण लगता है। दो समस्यायें मेरे सामने हैं अथवा कहिये, दो संदर्भ हैं। एक तो है सांस्कृतिक और दूसरा है आर्थिक। आर्थिक संदर्भ जो है, वह अपने लिए, अपनी परिस्थिति में है। देश की राजनैतिक स्वाधीनता के ३५ वर्षों के बाद भी गरीबी और अमीरी की जो विषमता है, उसकी जड़ें हटाने का कोई रास्ता नहीं मिला। जिन्होंने हमें रास्ता दिखलाया अथवा दिखलाना चाहा था, उनको हमने स्वाधीनता के बाद ही विदा कर दिया। उनका नाम था महात्मा गाँधी। शरीर से विदा कर दिया, ताकि अपने मन से उन्हें विदा करने में हमें सुविधा रहे। उन्होंने एक रास्ता दिखाया १९१५-१६ से हिन्दुस्तान में। सियासती आजादी लाना तो आसान है, लेकिन राष्ट्र के हित के लिए अधिष्ठान चाहिए। उन्होंने खादी-ग्रामोद्योग का कार्यक्रम देकर एक मानव-निष्ठ अर्थशास्त्र तथा मानवनिष्ठ अर्थतत्व का उद्घोष किया।

दुर्भाग्य है कि राष्ट्र भटक गया; उस रास्ते से हट गया। ये अच्छे खयालात मान लिए गये कि जल्दी से जल्दी हम औद्योगीकरण करें। पश्चिम के लोगों में इतने बड़े-बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धे बने हैं। जल्दी से जल्दी हम भी बनायेंगे, तो हमारा इन्जीनियरिंग बढ़ेगा, अतिरिक्त आय बढ़ेगी और ज्यादा से ज्यादा लोगों को नौकरी दे पायेंगे। लेकिन जो इस प्रकार आर्थिक और औद्योगिक नीति इस देश में अपनायी गयी, उसमें नतीजा भी ३५ वर्षों में मालूम पड़ता है—इस कदर भीख माँगते-माँगते दुनियाँ से। यदि और भी रास्ते निकाले जायँ, तो भी गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी की जड़ हम उखाड़ नहीं पायेंगे, क्योंकि इधर आबादी बढ़ती चली जा रही है, उधर बेरोजगारी बढ़ती चली जा रही है। इधर जो सम्भावनाएँ हैं उद्योग धन्धे या नौकरियाँ पैदा करने की, वे इतनी तेजी से बढ़ती नहीं हैं। अनुपात में उसमें एक विषमता बढ़ जाती है, तो इस देश में गरीबी और अमीरी मिटा नहीं पायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रास्ता दिखलाने वाले का एक समुदाय है, जिसका नाम है सन्त विनोबा जी। उन्होंने भूदान-आन्दोलन के मार्फत इस देश के छः लाख गाँवों में भूमि-व्यवस्था बदल करके भूमि का ग्रामीकरण करने का सपना देश के सामने रखा। हमें नहीं चाहिए राज्य पर स्वामित्व और न सरकार की मालकियत उत्पादन के साधनों पर। रास्ता, जो आजमाया गया है और जिसमें अड़चनें पैदा होती हैं, उनकी अड़चनें नहीं छूटेंगी। व्यक्ति की मालकियत रहे उत्पादन के साधनों पर, यह पूँजीवादी तरीका है। उसको भी छोड़ दें। हम एक मध्यम मार्ग अपनाएँ। भूमि जितनी है, वह ग्राम की हो जाय। भूमि के ग्रामीकरण का जो एक रास्ता उन्होंने दिखाया उस पर कुछ कदम हम बढ़ जायें। लेकिन जब दिशा मिले हमको—खास करके मध्यम वर्ग को, बुद्धिनिष्ठों को, अमीरों को, धनिकों को, सत्ता और सम्पत्तिधारकों को। जब विनोबा के रास्ते से चलेंगे, तो आत्म-विनियोग का सामना करना पड़ेगा, इसलिए हम पीछे हो गये। हम रास्ते से पीछे हट गये।

देश की आर्थिक उन्नति के लिए हम क्या करेंगे—विद्यार्थी-जीवन से बाहर निकल करके? अभी नहीं, कोई एक साल में, कोई दो साल में और कोई तीन साल में नागरिक बनेंगे। एक नागरिक के नाते देश की जिम्मेदारियाँ आपके कन्धों पर आयेंगी। यह तो आर्थिक प्रश्न है।

मैंने कहा था कि आप के सामने तीन प्रश्न हैं। दूसरा प्रश्न है सांस्कृतिक संदर्भ का। सांस्कृतिक प्रश्न के बारे में मैंने आप से सुबह कुछ जिक्र किया था। इस देश में इस प्रकार हम बेरोजगारी, बेकारी घटाने में बहुत सफल नहीं हो पाये हैं। वैसे जो अपने सांस्कृतिक मूल्य हैं, उनके पालन करने, उनके संरक्षण करने और उन मूल्यों को सामाजिक जीवन में दाखिल करने का जो काम आजादी के बाद हो जाना चाहिए था, वह हम नहीं कर पाये हैं। हमारे और आपके बीच कुछ बड़े लोग हैं। ये बड़े लोग इसको नहीं कर पाये।

भारतीय संस्कृति का निचोड़ है कि मनुष्य केवल हाड़-मांस का पुतला नहीं है, वह तो दिव्य चेतना का स्थायी निवास है। मनुष्य का यह धर्म है कि उसके अन्दर जो दिव्य भगवत्-सत्ता है, उसको अपने इन्द्रियों के द्वारा अवतरित करें और प्रकट करें उस भगवत्सत्ता को अवतरित करने लायक सामाजिक व्यवस्था खड़ी करें। अर्थव्यवस्था एवं अर्थतंत्र खड़ा करें। सभी राज्यों, अर्थतन्त्रों, शास्त्रों और शिक्षण का एक ही उद्देश्य है कि मानवीय सम्बन्धों में जो आत्मसत्ता है तथा चेतना है, उसको प्रकट होने का अवसर खड़ा करें। यह हो नहीं पाया। इसकी चर्चा अब दो-तीन दिनों में हम करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनुष्य मनुष्य नहीं रह गया। कहते हैं—'सत्यं परं धीमहि', 'सत्यमेव जयते', किन्तु इस देश में असत्य का बोल-बाला है, अधर्म है, पथ-भ्रष्टता है। सज्जनता, सत्यनिष्ठा तथा सच्चरित्रता के पीछे समाज के समर्थन नहीं हैं। आज समाज में बोल-बाला है गुण्डा-गर्दी का, भ्रष्टाचार का और झूठ को सच करने का तो फिर आपके व हमारे सामने सवाल है कि इस देश में पुनः मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा कैसे हो?

हम धर्म और अध्यात्म की बात करें, तो धर्म और अध्यात्म मनुष्यों के लिए होते हैं, पशुओं के लिए नहीं। पहले तो हमें मनुष्य बनना पड़ेगा। आकृति से नहीं, प्रकृति से बनना पड़ेगा। आप जानते हैं, मनुष्य किसे कहते हैं? मनुष्य का मतलब स्वच्छ विवेक वाला होना है। महाराष्ट्र में एक सन्त ज्ञानेश्वर थे, जिन्होंने १२ वर्ष की आयु में श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर टिप्पणी लिखी, भावार्थ ही था। उसका नाम ज्ञानेश्वरी है। ज्ञानेश्वर बहुत क्रान्तिकारी, क्रान्तदर्शी, मर्मस्पर्शी और प्रतिभावाले मनुष्य थे। वे नमन करते हैं—स्वसंवेद्यात्म-रूपम्—मैं आत्मरूप को नमन करता हूं, जो स्वयं संवेद्य है। जो मनुष्य की स्वसंवेदना है, वह क्या है? उसका आत्मज्ञ रूप है। वह अपने आप को जान सकता है; पहचान सकता है। मनुष्य वह है, जो जानता है कि वह क्या कर रहा है। अभी आप बैठे हैं, हमें देख रहे हैं, सुन रहे हैं। क्या सुन रहे हैं, इसका आपको भान है। यह है मनुष्य की संवेदनशीलता। यदि स्वसंवेदनशीलता हमें हो भी गई, तो हम अपना समाज नहीं बना पाते हैं। पशुओं की तरह झुण्ड बना लेने तथा गिरोह बनाकर घूम लेने से कोई मनुष्य संवेदनशील समाज नहीं बना पाता है। संवेदनशील तो समाज के प्रति जिम्मेदार बन जाता है।

बात जिम्मेदारी की है। यदि हमें मालूम ही न हो कि हम गलत कर रहे हैं, तो हम नैतिक अपराध कैसे समझेंगे? अपराध वह करता है, जिसको उसे समझने की शक्ति नहीं है। अतः स्वसंवेद्यता से हमें मनुष्य बनना है। इसका माने है कि यह जो शक्ति है हमारी स्वयंसंवेद्यता की, उसका पूरा उपयोग करना चाहिए। यदि हम जानते हैं कि एक काम गलत है, तो उसे न करें—चाहे हमारे सामने कोई पांच हजार के नोट दिखावे या पाँच लाख के। क्या हम पशु हैं कि किसी ने हमारे सामने हरी घास दिखाई और हम उसके पीछे दौड़ पड़े। हमें जब मालूम है कि यह गलत है और उसे हम करते हैं, तो हमें वहाँ यह जानना चाहिए कि हमें क्या करना है। हम अपनी समझ के वफादार बनें। वफादार बनकर प्रामाणिक रूप से जियें। खैर, मुझे यह कहना था कि यह जो सांस्कृतिक संदर्भ है कि आज राष्ट्र में नैतिक मूल्यों का पतन हो गया है, उसकी प्रतिष्ठा हम कैसे करें? बेरोजगारी को हटाते समय तथा भुखमरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को मिटाते समय नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा फिर से करें, यह सोचना है। इस दृष्टि से सांस्कृतिक और आर्थिक मोर्चे पर विद्यार्थियों. युवकों और पूरे राष्ट्र के लिए मैंने सावधान रहने को कहा था। इसका सन्दर्भ आपका गाँव है, जिसके विषय में आज आपके जिलाधिकारी श्री झा महोदय ने बड़ा ही विचारपूर्ण प्रवचन सुबह किया था, जिसे सुनकर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई।

ये गाँव आप के हैं, जहाँ रहने लायक नहीं है। कारण, स्वच्छता पता नहीं यहाँ कैसी है? आप तो इस क्षेत्र के रहने वाले हैं, पता नहीं यहाँ क्या है? परन्तु जिन क्षेत्रों में मेरा रहना अधिक है, उधर गाँव के गाँव हैं, जहां पीने का पानी ही नहीं है। तो फिर गाँव वाले कैसे रहेंगे? पीने का पानी नहीं तो सिंचाई की व्यवस्था कहाँ। गन्दगी भी पड़ी है। गाँवों में जीवन के लिए सारे साधन पड़े हैं। यहाँ धरती है। यहाँ अनाज, कपास, साग-सब्जी, तथा फल-फूल पैदा करने के लिए भरपूर जगह है। यह शहर वालों के पास नहीं है। जीवन जीने के लिए हमें जितना सामान चाहिए, वह हमें सारा का सारा गाँव में प्राप्त होता है। समस्या यह है कि हम उन संसाधनों को जीवन से कैसे जोड़ें? यदि कोई यह कहता हो कि यह गरीब देश है तो वह यह तथ्य देखता नहीं है। जो यहाँ के लोगों की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति के लिए जो व्यवस्था है, वह अच्छी नहीं है। वास्तव में गांवों में ही सारा सामान, अन्न, वस्त्र, आरोग्य के साधन पड़े हैं, लेकिन हमें उनका भान नहीं हो पाता। व्यवस्था ऐसी कि वहाँ रहने का मन ही न करे। इस व्यवस्था को हम सुधारेंगे और गांव मनुष्यों के रहने लायक बनायेंगे। यदि यह संकल्प लेकर युवक उठें तो भारत का भविष्य उज्ज्वल है। दूसरी बात हैं गांवों में सर्वधर्म-समभाव की। महात्मा गांधी और उनके भी पहले रामकृष्ण परमहंस ने इस वैज्ञानिक युग में सर्वधर्म-समभाव की साधना की। अपने जीवन में व्यक्त करके उसे दिखाया। उसी प्रवाह में विवेकानन्द पैदा हुए।

इन गाँवों में जाति-पाँति, भाषा एवं धर्म आदि के भेदभाव हैं। इन सब प्रकार के भेद-भावों को हम मिटायेंगे और हम एक बनकर साथ-साथ जियेंगे। यदि ऐसा संकल्प लेकर हम काम नहीं करेंगे तो ये जो गाँव टूटते हैं, टूटते चले जायेंगे। जिनको सुविधा होगी सम्प्रदाय बनायेंगे, जिनको सुविधा होगी जातिवाद के आधार पर समूह बनायेंगे, भाषावाद के आधार पर लोगों को भड़कायेंगे। नयी-नयी अल्पसंख्यक-चेतना को पैदा करेंगे। मेरे मित्रों! हमारे गाँव पर आक्रमण चारों तरफ से है और आर्थिक शोषण तो इतना है कि अब उससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा है। हमारे गाँवों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकता की जड़ को खोदने का कार्य प्रारम्भ हुआ है। इसका प्रतिकार करना होगा। तब गाँव टूटेंगे नहीं, बने रहेंगे।

इन दो चीजों को करने के बाद हमारे सामने तीसरी चीज है—गाँवों में जो कच्चा सामान है, उसको पक्का माल बनाने के लिए एक या दो गाँवों को मिलाकर या दस गाँवों की भी एक आर्थिक इकाई तैयार करना होगा। अर्थशास्त्र की भाषा में अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा, यह बताने के लिए यहाँ नहीं बैठे हैं, लेकिन गाँव में आयेगा उसके अनुरूप विज्ञान, यन्त्र-विज्ञान। गाँव का कच्चा सामान विज्ञान के दरवाजे पर भीख माँगता हुआ नहीं जायेगा। गाँव में जो सामान पैदा हो, उसके भाव तय करने के लिए शहरी क्षेत्रों के विक्रय-केन्द्रों, उसके क्रेता तथा उत्पादित वस्तु को तुलनात्मक रूप में ध्यान में रखना होगा। इसके साथ ही किसान जो पैदा करता है तथा कारीगर जो तैयार करता है, उसका सम्मानपूर्वक मूल्य मिलना चाहिए, ऐसी परिस्थिति पैदा करनी पड़ेगी। इसलिए ग्रामीण जीवन आर्थिक और नैतिक मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए एक बड़ा साफ-सुथरा आह्वान हमारे और आपके सामने करता है। आप विद्यार्थी हैं। यह कहेंगे—बहन, हम लोग पढ़ते समय इसके लिए क्या कर सकते हैं। मैंने आप लोगों के सामने जागतिक, राष्ट्रीय और ग्रामीण सन्दर्भ में समस्याओं के स्वरूप को बड़े संक्षेप में रखने की कोशिश की है। आप यहाँ आये हैं, यह बड़ा सुन्दर काम है। विद्यार्थी-जीवन तप का जीवन है। यह तपस्या का काम है और गुण का सम्पादन तथा तपस्या के बिना नहीं होगा। मेरे मित्रों! यह आत्मा परम शक्तिशाली है। यह बलहीनों का काम नहीं है। इसको अर्जित करना चाहिए।

भारत के बच्चों से एक ही बात कहनी है कि यह दुष्टों का, भीरुओं का, कायरों का देश बन गया है। यहाँ शरीर और मन से परेशानी है। बुद्धि से तेजस्वी युवकों का अभाव है। तीन-चार वर्षों का समय यहाँ आपका सुन्दर-सा है, तो आप लोग भी तय करिए, क्योंकि हमारे बुजुर्ग और मेरी पीढ़ी के लोगों ने भी मिलकर इस भूमि को भोग-भूमि बना दिया है। भोग का निषेध नहीं है। लेकिन कैसा भोग हो? त्यागसहित भोग—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' हो। यहाँ भोग और त्याग के बीच कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं है। यदि मेरे देश में चालीस फीसदी से अधिक लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं तो मैं लखपति या करोड़पति बनने की अभिलाषा या आकांक्षा नहीं रखूँगा। मेरे देश में भुखमरी है, तब लखपति-करोड़पति बनने की आकांक्षायें गलत हैं, अनै-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिक हैं। यह अधर्म है और यह अन्याय है। इसलिए हमें भोग की दिशा में लक्ष्मण-रेखा याद होनी चाहिए और इसका हमेशा पालन होना चाहिए।

एक दूसरी बात है—यह वासुदेव की भूमि है तो यहाँ कोई वासना नहीं होनी चाहिए। इसकी कोई कल्पना यहाँ नहीं है। यह मन के उद्‌गार हैं तथा आत्मा के भी उद्‌गार हैं कि कोई चीज यहाँ आपकी नहीं है। सभी वस्तुओं में प्रभु का निवास है। समय की मर्यादा है, लेकिन एक घटना याद आयी—जब मैं विद्यार्थियों के साथ बैठती हूँ, तो मुझे घड़ी को भूल जाना अच्छा लगता है। कोई बारह वर्ष पहले की बात है। अमेरिका से एक मित्र मेरे पास आये। यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्र के प्रोफेसर, कुछ प्रश्नों के अभ्यास के लिए आये। वे कहने लगे—'बहन, सुना है कि भारत के गाँवों में रहने वाले लोग भी भगवान् को मानते हैं और वे ईश्वरनिष्ठ हैं। तो मुझे कहीं ले चलिए और दिखाइये।' मैंने जीप मँगायी और उन्हें बैठाकर चली। मैंने कह दिया कि जहाँ आप कहेंगे गाड़ी रोक दूँगी और जिससे आप कहेंगे, उससे बात करवा दूँगी। घूमते घूमते हम लोग चले और पहाड़ से उतरने पर एक गाँव में गये। एक पचपन-साठ वर्ष की उम्र के सज्जन अपने खेत में हल चला रहे थे। प्रो० साहब ने कहा—गाड़ी रोक दीजिए। मैं उन्हें उस भाई के पास ले गई। करीब ग्यारह बजे का समय था। उन्होंने उस किसान से कहा कि क्या आप भगवान् को मानते हैं? तो वे हँसे और हल पर से हाथ उठाकर सूर्य की तरफ दिखाते हुए कहा कि उसको मानना पड़ता है कि वह है। उसकी तरफ देखना पड़ता है। इसके बाद फिर प्रोफेसर साहब ने खेत से हाथ में मिट्टी उठायी और कहा यह तो पदार्थ है। मैं तो भाषान्तर दूर करने का काम कर रही थी। वह बोल रहे थे—यह तो जड़ मिट्टी है। वे मिट्टी हाथ से गिराने ही जा रहे थे कि लपक कर उस किसान ने मिट्टी अपने हाथ में ले ली और कहा यह मेरी मां है। इसे आप जड़ कहते हैं। आप के बम्बई, कलकत्ते व दिल्ली के पास और संसार का भ्रमण करने वाले भारतीय के पास यह चीज मिलेगी कि नहीं मुझे नहीं मालूम। लेकिन उसने कहा—मेरी मां को जड़ कहता है। और फिर उसने कहा—इसी में से अनाज निकलता है, इसी में से साग-सब्जी मिलती है और इसी में से फल-फूल मिलते हैं। इसे तू जड़ पदार्थ कहता है। डाक्टर साहब ऐसे लग रहे थे कि काटो तो खून नहीं। मुझसे कहने लगे—बहन, मेरा काम हो गया। गाड़ी वापस ले चलो। आज जो ग्राम-वासियों को गलत रास्ते पर हम ले जा रहे हैं, उन्हें गलत सपने और लालच दे रहे हैं, बड़ी-बड़ी लालसायें उनके सामने खड़ी कर रहे हैं तो वे इसके लिए हमें क्षमा नहीं करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं कह रही थी कि उपभोग की मर्यादा क्या है। यह जगत् ईशावास्य है। लेना उतना ही है, जितना आवश्यकता की पूर्ति के लिए हमें जरूरी है। उससे अधिक नहीं लेना है। इस देश में अपरिग्रह का मूल्य है। राजा-महाराजा, सम्राट् भी संन्यासियों के सामने नम्र होते चले गये, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम के अन्त में मोक्ष है। जब हम मरने लगें, तो कहीं मोह के कीचड़ में न फँसने लगें। इस देश में मृत्यु को संकट नहीं माना गया है। "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि"—गीता में पढ़ते होंगे। यह विचार जीवन का शास्त्र है, केवल रटने की बात नहीं है, पाठ करके जान लेने की बात नहीं है। यह जीवन जीने का शास्त्र है। यहाँ मृत्यु को महाप्रयाण मानने वाले, आंखों में आंख डालकर मृत्यु को देखने वाले भक्त, सन्त और वीर पैदा हुए हैं। ऐसी यह शक्ति है, तो हमें अपने विद्यालयीय एवं महाविद्यालयीय शिक्षा-काल में इस देश के ध्येय को रग-रग में भर लेना चाहिए। मिट्टी से घड़ा बना है और श्रद्धा के उपादान से ही मनुष्य बना है। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" अपने भीतर श्रद्धा को कूट-कूटकर भर लीजिए। यहाँ तप करेंगे तो शरीर की इन्द्रियाँ आपके अनुकूल बनेंगी, काम देंगी।

परबस जानि हँस्यो जिन इन्द्रिन, निजवस ह्वै न हँसैहों।
मन मधुपहि प्रण करि तुलसी, रघुपतिपदकमल बसैहों॥

परवस जानि हँस्यो जिन इन्द्रिन, इन्द्रियों ने यह देख लिया है। अपने पौरुष पर वे हँसने लगीं, लेकिन जब 'मन मधुपहि प्रण करि तुलसी, रघुपतिपद—कमल बसैहों', अर्थात् जिस दिन यह मन-मधुप रघुपति के पदकमल में जाकर बैठ जायेगा वह स्वाधीन हो जायेगा। इन्द्रियों को स्वाधीन बनाने का यह काम मन पर संयम-रूपी लगाम लगाकर सीखने का है।

आज सामाजिक जीवन में जितने अनर्थ हैं, वे इन्द्रिय-लम्पटता के कारण हैं, अविवेक और असंयम के कारण हैं और मन की गुलामी के कारण हैं। मित्रों, प्रश्न राजनैतिक हों, सामाजिक हों, आर्थिक हों या अन्य किसी क्षेत्र के हों, हम इन्द्रिय-लम्पटता को ध्यान में रखकर, उन्हें स्ववश करने को सीखें। तो होगा यह कि राग-द्वेष का ज्वर नहीं चढ़ेगा। फिर मन के सम्बन्धों के क्रम में वृद्धि करें। इस प्रकार की शक्ति हममें विकसित हो।

देश के गाँवों की जागृति के सम्बन्ध में जो प्रश्न खड़े हैं, उनके सम्बन्ध में स्वाधीन मनुष्य चाहिए। आपकी वाणी आपके अधीन है, मन आपके अधीन है और इन्द्रियाँ आप के अधीन हैं तो मन और इन्द्रियों से सम्बन्धित कार्य यदि इस विद्यालयीय जीवन में आते हैं, तब आपका विद्यार्थी-धर्म पूरा हुआ। मैं ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानती हूँ। वैसे जो कर्त्तव्य आपके लिए हैं, उन परीक्षाओं के लिए पढ़ेंगे ही, उनमें सफलता प्राप्त करेंगे ही। इस बात को कहने की मुझे आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है।

दूसरी बात आप से कह दूं कि संसार में सारा का सारा शोषण है। स्वामित्व एवं प्रभुत्व की वासना में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर स्वामित्व एवं पदार्थों पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहता है। मुझे यह चाहिए, मैं इसको पकड़ लूं। यह सब तो प्रभुत्व और स्वामित्व का प्रयोजन है। इससे आज के हिन्दुस्तान की समस्याओं का बहुत बड़ा शोर मचता चला आया है। लेकिन पूंजीवादी तो हमारे मानस हैं। इनके द्वारा ही लोकशाही जिलाई जा रही है। जिनका मानस पूंजीवादी है, आकांक्षायें सामन्तवादी हैं, वे लोग लोकतान्त्रिक व्यवस्था को चला रहे हैं। अतः लोकतन्त्र के नागरिक बनाने के लिए इस देश में हमारा मानस भी लोकतान्त्रिक बने। लोकतान्त्रिक माने हमारे मन में शोषण, अन्याय तथा अधर्म पैदा करने वाली जो लालसा है, उसे निर्मूल करने की बात नहीं है। यह तो सन्तों-महात्माओं के जीवन में निर्मूल होती है। लेकिन इस लालसा को हम काबू में रखें, संयम में रखें, क्योंकि जब तक हमारे मन में लखपति और करोड़पति बनने की इच्छा रहेगी, तब तक हम गलत मार्ग से, झूठ बोल कर, अन्याय से, रिश्वत लेकर और लाभ लेकर धनी बनेंगे। लाख कानून बनें और एक-एक व्यक्ति के पीछे एक-एक पुलिस भी रहे, तो भी भ्रष्टाचार का अन्त आने वाला नहीं है।

अन्त में मैं कहना चाहती हूं कि विद्यार्थी-जीवन में जो भी भाई हैं, बहनें हैं, उनके दिल में बड़ा सा संकल्प हो। मैं तो कहती हूं कि यह संकल्प आप सबके चित्त में हो, कि चाहे जिस कारण से हो, मैं अपने जीवन में अनुचित लाभ नहीं लूंगा, रिश्वत नहीं लूंगा, मुफ्तखोरी का सामान नहीं लूंगा और चोर-बाजारी का सामान नहीं लूंगा। देखें आप, मैं रिश्वत देने की बात नहीं कर रही हूं, क्योंकि यदि मैं रिश्वत देने की बात कहूं और कहूं कि रिश्वत मत दो तो मेरे सामने बीसों दलीलें अगली सभा में पेश की जायेंगी—हमारा काम नहीं हो रहा है इसलिए देना है। अतएव मैं देने की बात नहीं कर रही हूं। कह रही हूं कि मैं रिश्वत नहीं लूंगा, मैं रिश्वत नहीं लूंगी—ऐसा संकल्प हम करें। विधायक क्रान्तियाँ कैसे बनीं या बन सकती हैं? इसका एक मधुर सम्बन्ध है। इतना ही संकल्प करें कि मेरे घर में घूस का पैसा नहीं आयेगा, पाप का पैसा नहीं आयेगा तथा झूठ का पैसा नहीं आयेगा, इसकी मुझे चाहे जो कीमत देनी पड़ेगी। अब तो हमें जेल नहीं जाना है और न लाठी खानी है और न गोली ही खानी है, लेकिन अपने जीवन-मूल्यों को जिलाने के लिए संघर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना है। मरने में जो शान्ति नहीं है, वह जीने में है। मूल्यों को जिलाते-जिलाते हम जियेंगे। यदि मूल्यों को जिलाते-जिलाते मरना हुआ, तो मर भी जायेंगे। इस प्रकार से अन्याय, शोषण और भ्रष्टाचार का अन्त करने के लिए अपने जीवन में मैं प्रयास करूँगा; इतना सङ्कल्प आप करें। तन-मन से सत् की उपासना, स्वच्छन्दता से संयम की ओर यात्रा, पराधीनता से स्वाधीनता की ओर यात्रा करें। अपने पारिवारिक जीवन में एवं व्यक्तिगत जीवन में भ्रष्टाचार, अधर्म, अन्याय तथा रिश्वत इनको अस्वीकार करें।

आप कहेंगे, 'विमल बहन को क्या हक है यह कहने के लिए। यह तो गृहस्थाश्रम की बात है और इन्होंने गृहस्थाश्रम तो कभी स्वीकार नहीं किया है। जो बेचारे परिवार बसा के बैठे हैं, नौकरी करते हैं उनको पता चलता है।' आपके मन में यह बात आयेगी, इसलिए हमें इन सभी संभावनाओं को जानते हुए एक घटना कहनी है कि मेरे पिता जी कहा करते थे, जब उनकी शादी हुई और मेरी माँ उनके घर आयीं तो पहले दिन उन्होंने मेरे पिताजी से एक बचन माँगा। उन्होंने कहा—'मुझे धन-दौलत, नौकर-चाकर, मोटर-बँगला कुछ नहीं चाहिए। आप एक ही बचन दीजिए कि घर में कभी आप झूठ नहीं बोलेंगे। आप कभी घर मे अधर्म का, असत्य का, पाप का धन नहीं लायेंगे। सुबह शाम रोटी और सब्जी या चावल के साथ नमक खाकर ही मैं सन्तुष्ट रहूँगी। लेकिन यदि अधर्म का, पाप का, अन्याय का, झूठ का धन आयेगा तो हम अपने बच्चों को सत्य की शिक्षा कैसे देंगे?—मनसा, वाचा और कर्मणा सत्य का पालन ठीक से करो—और हम अपने बच्चों से सत्य-पालन के लिए कहने के अधिकारी कैसे हैं। हम और आप ऐसे अधिकारी बने रहें, बस इतनी ही मेरी आप से प्रार्थना है।' मेरे पिता जी कहते थे कि उस दिन जो तुम्हारी माँ ने मेरा मार्ग-दर्शन किया और मेरे जीवन में परिवर्तन लाया, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता हूँ। वे जब हमें छोड़कर गये तो न हमारे लिए कहीं एक एकड़ जमीन थी और न हजार दो हजार रुपये बैंक में रखकर गये। वह कह कर गये कि चरित्र को विरासत में ले जाओ।

गृहस्थाश्रम में रहते हुए ऋषियों-मुनियों ने यह तप जिलाया, अपने हाड़-मांस की आहुति देकर। यह मेरे लिए और आपके लिए सौभाग्य की बात होगी कि फिर एकबार आहुति दी जाय। भगत सिंह की तरह जाकर फाँसी के तख्ते पर झूलना नहीं है और न लाहौर के जेल में जयप्रकाश जी जैसे सड़ना है। हमें तो अपने जीवन में इन विचारों को सत्यापित करना है, धर्माचरण करना है। स्वधर्म जो नष्ट हो रहा है, उसे वापस प्रतिष्ठित करना है। होगा क्या?—मिठाई नहीं खायेंगे, किन्तु सूखी रोटी खाकर ऋषियों के देश में ऋषियों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तान उनके मूल्यों को बचा लें तो मैं मानती हूँ कि बड़े सस्ते में बहुत बड़ा धर्म हुआ; ऐसा मेरा विचार है। मुझे कहना है कि इस समय संसार में आध्यात्मिक मूल्यों की खोज हो रही है और लोगों की नजर भारत पर टिकी है। भारत में इतनी भव्य विरासत आध्यात्मिक मूल्यों की होने पर भी भारत ही अधःपतन की तरफ बढ़ रहा है। यह विषय तो किसी दिन सायंकाल मैं आपके सामने दूँगी, लेकिन युवकों का काम है कि समस्याओं को और चुनौतियों को देखकर वे दब न जायँ, बल्कि उनके मन में साहस का संचार हो। दादा धर्माधिकारी जी कहते हैं कि जो समस्याओं को देखकर घबड़ाते हैं, उनको ही बुढ़ापा वाला कहेंगे। जब समस्याओं को देखकर बाहें फड़क उठती हैं तो उसी का नाम जवानी है। वे कहते हैं कि एक बूढ़ा कहेगा कि दो रातों के बीच एक दिन कैसे बैठ गया और जवान कहेगा कि दो दिनों के बीच एक रात को कैसे सिकुड़ कर जीना होता है। बूढ़ा कहेगा कि गुलाब के फूल में काँटे लगे हैं, क्योंकि उसे जहाँ-तहाँ त्रुटियाँ ही नजर आती हैं। जवान कहेगा कि यदि काँटों में भी गुलाब खिलते हैं तो आज की इतनी प्रतिकूल परिस्थिति में भी हमारी जिन्दगी के पुष्प खिल सकते हैं। काँटों में गुलाब देखने की नजर मेरे बच्चों, आप सबको मिले। चुनौतियों को स्वीकारने की जो सर्जनशील ऊर्जा हमारे भीतर पड़ी है, उसको काम में लगावें। प्रतिकूल परिस्थितियों में आप बड़े गर्व से आगे बढ़ सकते हैं।

याद आयी, १९५५ की एक घटना। विनोबा जी से मैंने कहा कि बाबा, देश की परिस्थिति कितनी मुश्किल है। आप तो भूदान-आन्दोलन चला रहे हैं—हम नये-नये यूनिवर्सिटी से निकले थे और आन्दोलन में शामिल हुए थे – देश की हालत बहुत खराब है, कोई भी आपका साथ नहीं दे रहा है। वे हँसने लगे और कहने लगे कि देखो, जब पूनम की रात्रि तानाशाह है तो बड़ी ही स्वच्छ चाँदनी होती है। एक ही चाँद पूरे आकाश पर छा जाता है, लेकिन अमावस्या की रात्रि जो है, वह बहुत ही जनतंत्रात्मक होती है। तुम्हारे और हमारे जुगनुओं को भी अपना प्रकाश दिखाने का मौका मिलता है। आज की प्रतिकूल परिस्थिति में तुम्हें और मुझे काम करना है। अमावस की ही रात में हम अपने जीवन के छोटे-छोटे दीपक लेकर निकल पड़ते हैं और वही अमावस की रात दीपावली की मंगल-रात्रि बन सकती है।

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय :

जीवन-लक्ष्यों की प्राप्ति के सोपान

कुलमुख्य जो, छात्रावर्ग और अत्यन्त प्रिय छात्रवर्ग, आपके नाकुल-जैसे प्रसन्न वातावरण में और जीवन के हरे-भरे वातावरण में कुछ आत्म-निवेदन करने का, कुछ स्वस्थ संवाद करने का, एक सुखद अवसर प्रभु ने दिया है, जिसे मैं उनकी महती कृपा समझती हूँ। आप और हम जहाँ बैठे हैं, वह भारतवर्ष है। इसे हम कभी न भूल जायें कि जिस देश में हमारा जन्म हुआ है, उस देश में जीवन पदार्थ-परायण कभी न रहा, उपभोग-परायण कभी न रहा; जीवन रहा है—आत्म-परायण, प्रभु-परायण। जो विद्यार्थी यहाँ संस्थान में आते हैं, उन्हें भारतवर्ष के समत्व का परिचय करने का मतलब प्रभुपरायणता और आत्म-परायणता का संकेत होता है। ऐसे विचारों के द्वारा उन सद्भावना जगाने वाले छात्रों के भीतर अध्ययन के साथ-साथ कुछ क्रम रखते हुये होगें, ऐसी मैं आशा करती हूँ।

इस देश की जो सबसे बड़ी दौलत है, वह वेद, वेदान्त और वेदांग है। वेद कोई हिन्दुओं का ही विषय नहीं है। अपने देश में हजारों वर्ष पहले जीवन के रहस्य को तपस्या के द्वारा साक्षात् करने वाले ऋषि-मुनियों ने वैदिक वाङ्मय में अभिव्यक्त किया है। यह पौरूषेय है, या अपौरूषेय है, इस विषय में हम गौर करें, लेकिन वेदों का सामान्य परिचय, उपनिषदों का सामान्य परिचय रखें। कम से कम जो अष्टादश उपनिषद् हैं—ईश, केन, कठ आदि, उनका एक सामान्य परिचय, शास्त्रों का एक सामान्य परिचय और श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन अवश्य करें। यह यदि यहाँ के विद्याध्ययन-काल में पठनेतर कार्यक्रम के रूप में किया जा सके और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जा सके, तो मैं मानती हूँ कि उत्तर प्रदेश पर ही नहीं बल्कि पूरे भारतवर्ष पर इस शिक्षा-संस्थान का एक महान् उपकार होगा। साम्प्रदायिकों के हाथों में धर्म-साहित्य एवं अध्यात्म-साहित्य चला गया है—चाहे वह जैनधर्म का हो या इस्लाम-धर्म का हो। यह जो हमारा ऐश्वर्य है, उससे हम अपरिचित रह जाते हैं। विद्यार्थी-वर्ग, प्राध्यापक-वर्ग एवं इस संस्था के संचालक-वर्ग से मेरा अनुरोध है कि आप लोग अपने ऐश्वर्य से परिचय प्राप्त करें। इसे कितना आप व्यवहार में लायेंगे, यह मुझे मालूम नहीं। संस्थानों के बीच कभी मेरा जाना नहीं हुआ। लेकिन मुझे लगता है कि वैदिक वाङ्मय का परिचय जहाँ-जहाँ जिस शिक्षा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्थान में सम्भव हो, जिस कक्षा के छात्रों में आकर्षण जगा सकें, इसे सरलीकृत पद्धति से यदि कुछ किया जा सके, तो एक बीज पड़ेगा चित्त में, एक अधिष्ठान होगा चित्त में।

जब तक जीवन की एकता का भान नहीं होगा, तब तक मैं नहीं मानती कि कोई नैतिक मूल्य रह सकेंगे। भारतवर्ष की तो क्या बात, आप का उत्तर प्रदेश भारतवर्ष में सबसे बड़ा राज्य है। हिमालय इसके मान को बढ़ाता हुआ उत्तर में विराजमान है। गंगा, यमुना, सरयू सभी माताएं अपनी करुणा का पीयूष पिलाते हुये इस प्रदेश में बहती हैं। यह राम का प्रदेश है, यह वासुदेव का प्रदेश है। यहाँ की जो सन्तान है उस पर, भारतवर्ष में सांस्कृतिक उत्थान फिर से हो, इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी आती है और आयेगी, ऐसा मैं मानती हूं। जनसंख्या में भी यह प्रदेश एक शक्तिशाली प्रदेश है ही, विस्तार में भी शक्तिशाली है। यहाँ उर्वरा भूमि है, इसलिए यहाँ की सन्तान, यहाँ के विद्यार्थी, अपने विद्यालय-महा विद्यालय में अध्ययन करके कोई डाक्टर बनेगा, कोई साइन्टिस्ट बनेगा और कोई वकील बनेगा। लेकिन यह सब कुछ करते हुये उसका अधिष्ठान होगा कि मैं एक भारतीय व्यक्ति हूं, मैं मनुष्य हूं और मुझे मनुष्य के नाते जीना सीखने के लिए क्या करना होगा? इसको आज थोड़ा देखें।

यह जो अधिष्ठान में मानवता है, यदि नहीं रहेगी, या खोखली होगी तो फिर अच्छे से अच्छा डाक्टर, शिक्षक, शासक या वैज्ञानिक भी मनुष्य के नाते दरिद्र रह जायेगा। मानवता का मानवीय मूल्य से उसका कोई नाता नहीं रह जायेगा। आज के युवकों में से ऐसे निकलेंगे, ऐसी मेरी आशा है। विद्यालयों, महाविद्यालयों में पहुँचे हुए आप सब क्या कर सकते हैं? सबसे पहले अपने रोज के जीवन में ५-१० मिनट समय सुबह, शाम, जब आपको फुरसत हो, आप निकालें और देखें कि अपना यह शरीर क्या है, जिसको हम शरीर कहते हैं। कभी आप बच्चे थे, फिर आप किशोर बने, आप युवक बने तो देखें यह पात्र क्या है? जैसे सरिता का जल बहता है, वैसे इस पात्र में से जीवन के अनेक पल गुजरते हैं। इसी हाड़-मांस के शरीर से खूब परिचय प्राप्त कर लें—इसको स्वस्थ रखना, इसको सुन्दर रखना, निरामय तत्पर बनाना। कभी इसमें आलस्य या प्रमाद और द्वेष प्रवेश न करें, इसको सावधानी रखना, यह एक तन का परिचय है; मानवीय मूल्य है; बड़ा भारी रहस्य है।

आप लोग पढ़ते होंगे और शायद यह जानते होंगे कि रूस में जो 'साइण्टिफिक रिसर्च डिपार्टमेण्ट' है, उसमें उन्होंने अपने यन्त्र-विज्ञान के बल से इस शरीर के भीतर के दर्शन किए हैं। यह जो स्थूल शरीर है, इसके भीतर उन्होंने फोटो ले लिये हैं---'थाट प्वाइण्ट'। ऐसे इस विचारकाया के विषय में १९३७ में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एलेक्सिस कैलेन ने 'मैन दी अन्नोन' जो ग्रन्थ लिखा, उसमें उल्लेख किया। १९६० में 'मैन इज फ्रेम्ड' नामक ग्रंथ जूलियस हक्सले ने संपादित किया। उसमें संसार के २४ वैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचार, मन्तव्य और अनुभव रखे हैं। मनुष्य के शरीर, मन और बुद्धि के विषय में उनका क्या कहना है? रूस ने इस विचारकाया के फोटो लिये। यानी शरीर में से प्राण निकल जाय तो उसके बाद भी १२ घण्टों तक विचारकाया की ऊर्जा मौजूद रहती है और उसमें गति रहती है। उसके हलन-चलन के फोटो लिये गये। विचारकाया के भीतर एक ऊर्जा-केन्द्र रहता है। एक स्वतन्त्र ऊर्जा-काया है। इसके भी फोटो वहाँ पर लिये गये। शरीर पूर्णतया मृत हो गया। ऐसा शरीर हो जाय, तो भी उसके बाद २४ घण्टे, ३६ घण्टे तक अन्दर ऊर्जा रहती है, उस ऊर्जा में हलन-चलन रहता है। रूस ने अभी जो इन दो शरीरों के अपने यन्त्र-विज्ञान से जाँच कर लिया, इसे उसने संभव बना लिया।

इस देश में सनातन काल से अनेक शरीरों के अनेक-अनेक कोशों की बात हुई है। पंच कोशों की बात सुनी होगी। आपके माता-पिता या समाज, जो ग्रन्थों के बारे में कहते हैं, इसमें नहीं उलझियेगा। आप साक्षात् स्वयं ग्रन्थ लेकर देखने लगेंगे तो पता चलेगा कि शरीर के विषय में केवल योगशास्त्र में ही नहीं, केवल आयुर्वेद में ही नहीं, लेकिन सनातन साहित्य में अनेक प्रकार से कहा गया है। देखा जाय तो अपना यह शरीर एक परम पावन और बड़ा ही जटिल यन्त्र है; अनेक ऊर्जाओं का क्रीड़ास्थान है। जैसे ब्रह्माण्ड में अनेक ऊर्जाएँ हैं, वैसे शरीर में हैं। इन ऊर्जाओं का फिर आप परिचय पायेंगे—जैसे बड़े-छोटे प्रकार के विकारों की ऊर्जा है। इन विकारों की ऊर्जा कैसे हाबी हो जाती है—वह काम हो, लोभ हो, क्रोध हो या ईर्ष्या हो। इन विकारों के हलन-चलन से मन और बुद्धि के साथ क्या होता है? मन-बुद्धि की हानि होती है या लाभ होता है? जैसे-जैसे आप बड़े होंगे आप देख पायेंगे कि विकारों की ऊर्जा है तथा भावनाओं की ऊर्जा है। इन ऊर्जाओं के गन्ध होते हैं; इनके स्पन्दन होते हैं और इनके नाद होते हैं। एक बड़ा लोमहर्षक क्षेत्र है।

अपना शरीर क्या है?—यह ब्रह्माण्ड की एक छोटी सी प्रतिकृति है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के प्रति सम्मान की, आदर की, प्यार की एवं श्रद्धा की भावना आप के हृदय एवं बुद्धि में जागरित होनी चाहिए। शरीर केवल इन्द्रियो के भोग के लिए मिला हुआ साधन-मात्र नही है। किसी भी कारण से—दमन से, पीड़न से कुचल डालने के लिए मिली हुई चीज नहीं है। अनेकताओ का शृङ्गार सज करके जीवन की एकता बैठी है। परमात्मा की सत्ता घास के तिनके से वटवृक्ष तक फैली हुई है। सागर के जल से सरिताओं एवं झरनों के कल-कल करनेवाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जल से भी प्राप्त होने वाली आत्मसत्ता हमारे सामने है। उससे परिचय पाने के लिए, उसके साथ संबन्ध जोड़ने के लिए, उसका रसास्वादन करने के लिए आप इस शरीर के प्रति श्रद्धा एवं आदर रखें। किराये पर ली गयी वस्तु के समान शरीर के प्रति अनास्था न रखें; शरीर का अनादर न करें; इसे उपेक्षा की दृष्टि से न देखें। शरीर को ठीक से खिलाना, ठीक से पिलाना, ठीक से सुलाना, इसमें जो वायु है, उसका ठीक से उपयोग करना लोग नहीं सीखते। वे एम० ए० हो जाते हैं, पी-एच्० डी० हो जाते हैं, संसार का भ्रमण कर आते हैं, लखपति, करोड़पति होते हैं, सत्ताधारी बनते हैं, लेकिन इस शरीर में रहना है—'देहश्चितायाम्' श्मशान तक साथ जानेवाला यह जो शरीर है, वह कैसा है—इसकी प्रतीक्षा क्यों नहीं, इसकी जो शक्ति है, वह २५ साल बाद धीमी पड़ जाती है। इसलिए इसमें रहने वाली शक्तियों को देखें; उनको ठीक से खिलावें और उनका रसास्वादन करें।

मनुष्य-जीवन रसास्वादन के लिए है और विद्यार्थी-जीवन उस आनन्द को लेने के लिए तैयारी करने के लिए है। आप अपने शरीर के साथ मैत्री का सम्बन्ध बनावें। न तो पूजा, न तो घृणा और न तो जुगुप्सा का यह विषय है। लेकिन मैत्री का विषय है। शिक्षा में हमें यह भी शिक्षण देना चाहिए कि पशुओं में भी संवेदनशीलता है। पशुओं में भी चेतना, जिसको हम ऋजु क्रिया कहें, स्मृति कहें, उनके पास है। लेकिन उनके पास उनके कोशों में वह नहीं है, जिससे वे अपने को जान सकें। हम अपने आपको जान सकते हैं। इसलिए आत्म-साक्षात्कार का प्रारम्भ कर आत्म-परिचय प्राप्त करें। परिचय की दिशा स्थूल की ओर रहे, ताकि सूक्ष्म की ओर हमारी गति हो सके। आप का शरीर स्वस्थ और निरामय रहे, इसके लिए ऐसा नहीं कि आप छुट्टियाँ मनायें—घण्टा-दो घण्टा, चार दिन-पाँच दिन जो कुछ भी समय मिले, उसे प्रमाद में बितायें। कहने का तात्पर्य यह है कि जब आप पढ़कर आते हैं तो सोने की इच्छा प्रकट करते हैं। क्या पढ़ना कोई संकट है? घर पर गये और छूट ली। यह जो छूट अपने शरीर के साथ लेते हैं, हर जगह इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। भारत में ऐसे युवक देखने को नहीं मिलते जो उठकर खड़ा हों और बोलने लगें, उनकी आँखों में रोशनी हो, यौवन का नूर हो। युवक थका-थका सा, हारा सा लगता है—निस्तेज, निष्प्राण। देश के इस प्रान्त में और इस क्षेत्र के ऐसे संस्थानों में भारत को यौवन का नूर देखने को मिले, ऐसी आशा मैं करती हूँ।

यहाँ पर कन्यायें हैं एवं पुरुष भी बैठे हुए हैं। मैं सबके लिए कह रही हूँ, स्वास्थ्य का परिचय प्राप्त कर शरीर को जिलाना चाहिए। नींद पूरी हो जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के बाद भी लोग आलस्य एवं प्रमाद में बिस्तर पर पड़े रहते हैं। वह तो बिस्तर का अपमान है; शय्या का अपमान है। चिन्ता कर रहे हैं। विचार में पड़े हैं। गुस्सा आया है और घुस पड़े हैं बिस्तर में। यदि इन बेचारी शय्याओं, बिस्तरों के पास वाणी होती तो वे मेरे पास आकर अपना रोना रोतीं कि देखो, उनको सोना नहीं है लेकिन ये आकर मेरा क्यों अपमान करते हैं? यह जो शय्या है, वह मन्दिर-जैसी पवित्र वस्तु है, क्योंकि आप प्रगाढ़ निद्रा में चले जाते हैं, जहाँ आपका अन्धकार सो जाता है। आप विश्व-सत्ता की और विश्व-चेतना की गोद में सो जाते हैं—'आत्मज्ञानम् विज्ञानम् आत्मचिन्ताम् च चैतन्यरूपाम्'। जो विद्यारूपी, चेतनारूपी नींद-माता हैं, उनकी गोद में बड़ी शान्ति तथा बड़े आनन्द के साथ सोने का आपका यह समय है। लेकिन पता नहीं आज कल के युवकों को बिस्तर पर जाते ही चिंता की कैसी बीमारी पकड़ लेती है। आज क्या किया? कल क्या होगा? ठीक किया है अथवा नहीं ठीक किया है। अरे भाई, कर्म करते हुए सावधान रहो। कर्म चिरानन्द हो, निरानन्द न हो। कर्म शांति एवं सावधानी-पूर्वक करो। अवधानों के अन्धकार में अनेक अनन्त गुजर जाते हैं। जब अवधानों का आलोक होता है और आनन्द का लोप होता है तो कर्म कैसे खिलते हैं? **'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः'**। प्रभु-पूजा से, एक-एक दिन सुबह से शाम, शाम से रात तक—ये समस्त मानव-कर्म प्रभु-पूजा के लिए बटोरने के पुष्प हैं। इसीलिए मैं आप से कहती हूं कि आप लोग, जब अपने शरीर को स्वस्थ रखते हैं तब स्वास्थ्य से लावण्य निखर उठता है। स्वास्थ्य ही आत्मा का समुद्र है। आत्मा के लिए स्वस्थ शरीर चाहिए ताकि लावण्य निखर सके; हम इन्द्रियों में से बाहर झाँक सकें।

दूसरा है आत्म-परिचय। आत्म-साक्षात्कार आत्मबल की जागृति के बिना कैसे आयेगा? इसका परिचय मन और शरीर के बीच के मार्ग से शुरू करें। आप बोलते हैं; हम सब बोलते हैं। लेकिन यह वाणी है क्या? यह शब्द बने कैसे? यह नाद कहाँ से उठता है? जैसे आप खेलते हैं, कूदते हैं, बैठकर कभी देखना कि जब आप के भीतर शब्द का जन्म होता है, तब नाद उठता कहाँ से है? नाद में से शब्द का जन्म है और शून्य में से नाद का जन्म है। शून्य का अर्थ है आकाश। 'आत्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशात् प्राणवायुः'। आत्मा के सबसे निकट है आकाश—हमारे भीतर का, हमारे बाहर का। आकाश में वायु, वायु में अग्नि और वायु तथा अग्नि दोनों मिलकर नाद। नाद में से शब्दों की उत्पत्ति है। देखो तो कितने के हम अधिकारी हैं। हम एक दूसरे के साथ बोल सकते हैं। शब्दों के द्वारा केवल ध्वनि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही नहीं, अपितु वाणी नाम की जो शक्ति है, उसका सदुपयोग करना ही नहीं, वैज्ञानिक उपयोग करना सीखें। वैज्ञानिक उपयोग आप जानते हैं। देखो, कोई घटना मैंने देखी तो मन में उठी कोई प्रतिक्रिया। मैंने प्रतिक्रिया को घटना के साथ मिला दिया। प्राचार्य जी पूछें कि क्या हुआ, तब घटना में अपनी प्रतिक्रिया का नमक, मिर्च और मसाला डाल करके सुना दिया और मान लिया कि मैंने घटना सुना दी। लेकिन घटना की शब्दावली कहते-कहते और उन शब्दों में शब्दांकित करने के बीच में मेरी प्रतिक्रियायें भी मिल गयीं। इसमें मेरा शब्दांकन प्रदूषित हो गया; शुद्ध नहीं रह गया। हम न तो किसी घटना को शुद्ध रूप से देख पाते हैं और न ही किसी घटना का शुद्ध रूप से शब्दांकन ही कर पाते हैं। यह बुजुर्गों की बीमारी है। आज बुजुर्गों का जो समाज बना है, उस समाज का बोझ कल आप के कन्धों पर आयेगा, किंतु हमारे बुजुर्गों की बीमारियाँ आप में प्रवेश न करें। इसलिए वाणी नाम की जो शक्ति है, उसका परिचय लें। क्योंकि बोलने में अपने शरीर का अग्नि-तत्त्व वायु के रूप में प्रकट होता है।

इसलिए पहले हम सीखें कि हम जो तथ्य देखते हैं, जहाँ तक हो सकता है—उन तथ्यों पर अपनी प्रतिक्रियाओं को लादेंगे नहीं; अपने मन्तव्य को लादेंगे नहीं; जैसा देखेंगे वैसा कहेंगे। इसको ही महात्मा गांधी जी 'सत्य' कहते हैं। यह सीधी बात है कि मन में कोई एक हेतु है और वाणी में कहने में दूसरी बात हम कहते हैं। हेतु को छिपाने के लिए वाणी का उपयोग किया गया। तथ्यों को बिगाड़ने के लिए वाणी का उपयोग किया गया। इस प्रकार मनुष्य के पास जो वाणी की शक्ति है, उसमें संघर्षों के, हिंसा के बीज पड़ने लगते हैं। यह एक बड़ी चीज है। आपके पास सोचने के लिए छोड़कर जाती हूँ। आप देखेंगे, प्रभु की कृपा से आप की संस्था में ऐसे कठिन प्रसंग या परिस्थितियाँ उपस्थित नहीं होती होंगी, लेकिन मेरे देखने में आज भारत भर में जितनी संस्थायें हैं, शिक्षण-संस्थायें हों या समाजसेवा की संस्थायें या संगठन हों, उनमें मनुष्य के निर्माण की गैरजिम्मेदारी दीखती है। क्या इससे बड़ा कोई अपराध हो सकता है जीवन के प्रति? अपने प्रति तो हम पहचानना सीखें कि हमारी वाणी मन में जो है, उसको छिपाकर कुछ और तो नहीं कह रही है। जो नहीं है, उसको दिखाने का आडम्बर तो नहीं कर रहे हैं। उसी से आडम्बर और पाखंड का जन्म होता है। पहले पाखण्डी बनने की इच्छा नहीं होती। लेकिन बोल दिया—एक इष्ट मन में है और वाणी में दूसरा। यह झूठ है। यह दूसरों को जितना नुकसान नहीं करता, उतना नुकसान अपना करता है। इसलिए हम वाणी का परिचय पायें। हम तथ्यों का यथार्थ शब्दांकन कर सकें और अपने हेतुओं का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथार्थ शब्दांकन कर सकें और अपने हेतुओं का यथार्थ नेतृत्व कर सकें, वाणी को ऐसी बनायें। सब को बनाना चाहिए। 'वाचनीयम् ब्राह्मणानाम्'—ब्राह्मणों को ही सारी शक्ति वाणी में हो, ऐसा नहीं। आप तो नागरिक बनेंगे, नागरिक की जो शक्ति है, उसकी वाणी है। वाणी में ही लोकतन्त्र के आधार बनेंगे और वाणी से ही एक दूसरे का दिल जोड़ेंगे। तोड़कर, जो मन में नहीं, वही कहेंगे। भ्रम, भ्रांति पैदा करेंगे। जो है, उसको छिपा कर किसी के साथ दुराव करेंगे। ये सारे अपराध जब सामाजिक जीवन में उतरेंगे, तब हम असामाजिक बनते जायेंगे। उसका कारण है कि वाणी पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

क्या मैं आशा कर सकती हूं कि जो लोग आत्मा की उपासना करना चाहते हैं, अध्यात्म-बल को जगाना चाहते हैं, वे वाणी को वैज्ञानिक बनावेंगे? यह जो झूठ बोलना है, वह मनुष्य में समन्वय की कमी है; हेतुओं और जीवन के बीच वैज्ञानिक समन्वय का अभाव है। इस ढंग से आप देखा करें तो जो झूठ बोला जाय, वह कोई बहुत बड़ा अपराध हुआ है। लघु ग्रन्थियाँ भी आयेंगी और इच्छा होगी कि जाकर कब मैं बतला दूं कि गुस्से में मुझसे पाप हुआ है या किसी मोह में आकर मैं झूठ बोल गया। झूठ को देखने का, फरेब को देखने का दृष्टिकोण बदलिए। मेरे मित्रों! यह विज्ञान का जमाना है। मनुष्य-जीवन को वैज्ञानिक दृष्टि से देखना अपेक्षित है। हम अपराधों को, दोषों को अपने भीतर संग्रह करते हुए और छिपाते हुए नहीं जियेंगे, बल्कि उससे मुक्त होने की कोशिश करेंगे। यह वाणी के क्षेत्र में मुझे कहना है।

शब्द बड़ी मधुर वस्तु है। एक-एक शब्द की आकृति देखना है। मुख से आवाज निकलती है, तो बाहर का जो अन्तरिक्ष है, उसमें आकृतियाँ बनती जाती हैं। वे अव्यक्त हैं। शब्दों के रंग हैं, रूप हैं, रस हैं, गन्ध हैं। इनकी बात आज आप से क्या करूं? आपके जैसा वह छोटा सा बालक था सन्त ज्ञानेश्वर, जिन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता की टीका लिखी। वे शब्द के रूप, रस, गन्ध की बात करते हैं। आज से ८०० वर्ष पहले 'ज्ञानेश्वरी' लिखी गयी और आज उसकी प्रतीति पश्चिम के वैज्ञानिकों में है। विचारों के वेग पर सारा प्रयोग फ्रांस में हुआ, अमेरिका में हुआ और यूरोप के देशों में चल रहा है। एक बार फिर कभी यह देश भी प्रयोग करेगा और देखेगा। हम शब्द बोलते समय मुख सावधानी से खोलें। हम वाणी बोलें, तो विचारपूर्वक बोलें। नाद-बिम्ब जो होगा तथा शब्द-बिम्ब जो बनेंगे, उनसे अपने देश में आज वर्तमान कटुता, अप्रसन्नता के वातावरण को हम प्रक्षालित कर डालेंगे। आज इस देश का जो वातावरण है, उसको नाद की शक्ति से तथा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द की शक्ति से प्रक्षालित करने की जरूरत है। आप यौवन की निर्मोल शक्ति लेकर उठेंगे। घर में जब आप माता-पिता से और अपने विद्यालयों में शिक्षकों से, अन्य भाइयों से, बहनों से तथा गाँवों में जाकर ग्रामवासियों से सावधानी से बोलना प्रारम्भ कर देंगे, तो देखियेगा कि आपके बोलने मात्र से ही वातावरण का परिवर्तन होने लगेगा। इसके आगे चलते हैं, तो शारीरिक व्यवहार जैसे ही वाणी को भी वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान कर संयम में बाँध लेने की शक्ति आ जाती है। शरीर को अनुशासन में और वाणी को संयम में बाँध लेना शिक्षा का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। इसलिए मैं कहती हूं कि विद्यालयों में, महाविद्यालयों में पढ़ते-पढ़ते आत्म-साक्षात्कार के उस सोपान को हम जपते चलें, तभी वाणी से वाणी का परिचय आप के शरीर-सन्दर्भ से पुष्ट हुगा। जैसा समाज होता है, वैसे ही आप के समुदाय होंगे। इसमें हम अभ्यास करते हैं—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

अर्थात् वाणी के साथ अर्थ जुड़ा हुआ है। अर्थ के साथ संचारी भाव जुटे हुए हैं। इन संचारी भावों को संस्कृति बनाती है, सभ्यता बनाती है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव आप नहीं कर पाते। वाणी के साथ जुड़े जो अर्थ हैं और जो भाव हैं, उनका परिचय आप थोड़ा अन्तर्मुखी होकर कर सकेंगे। देखने से तो कभी आत्म-विश्वास नहीं होगा। कभी ईर्ष्या उठती होगी, जो स्वाभाविक है। जब ये विचार भीतर पड़े हुए हैं, तब उनका अनुभव तो होगा ही।

कभी क्रोध को उठते देखा है? क्रोध को उठते देखना। उस समय आप के मन और वाणी की कैसी स्थिति होती होगी? यह सब आत्म-साक्षात्कार के सोपान हैं। यह सब आप आत्म-परिचय कर रहे हैं। अपने हाथ में ग्रन्थों को लेने की जरूरत नहीं है। हम स्वाध्याय के समय वैदिक वाङ्मय का रोचक ढंग से अध्ययन करें और आत्म-परिचय के लिए एकान्त में बैठें—पाँच दिन, दस दिन अपने साथ रखें और देखें एवं उसके सुखद परिणाम का अनुभव करें।

गुस्सा आते ही होता क्या है? आँखों को क्या हो जाता है? पेट कैसे सिकुड़ जाता है? कभी गुस्सा आने पर। देख लेना गुस्सा आया और एकदम बुद्धि पर कैसे पकड़ हुई। वचन की शक्ति कैसे कमजोर हुई? जितने कुढ़ने वाले, ईर्ष्या करने वाले, मत्सर करने वाले हैं, उनको पाचन-शक्ति पर पहले असर पड़ता है। क्रोध का परिणाम आँख पर होता है; मस्तक पर होता है; स्मरण-शक्ति पर होता है। ईर्ष्या से असलियत का विनाश होता है। देखना कभी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने शरीर में कैसी विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। क्रोध का शब्द अभी निकला नहीं कि उसके ज्वर में आ गये, उसके आवेश में आ गये और बोली भी कुछ नहीं निकल सकी। हमने अभी कुछ किया भी नहीं, उससे पहले इसने एक हमला आप के शरीर पर कर दिया और वाणी का धर्म नष्ट कर दिया। यदि दो मिनट टिका, तो बीस मिनट का नुकसान किया, पांच मिनट टिका तो पच्चास मिनट का नुकसान किया।

यह शरीर और मन पर आपस में गुथा हुआ बड़ा आवेग लाता है। ऐसा नहीं हो सकता कि मन में हम चाहे जो सोचें और शरीर हमारा स्वस्थ बना रहे। यह हो नहीं सकता। इसलिए विद्याध्ययन के समय में मन एवं शरीर के गुथे हुए स्वरूप को हम देखें, तो पता चलेगा कि शरीर में उठने वाला प्रत्येक कुत्सित विचार विकार पैदा करता है और प्रत्येक विकार तनाव पैदा करता है। रसायनों का दबाव होता है, जिसको रासायनिक दबाव कहते हैं। तनाव नाड़ी-तन्त्र में होता है, जिसको हम शिरासंक्षोभ (न्यूरोलाजिकल टेन्सन) कहते हैं। मन में आया हर विचार शिरा-संक्षोभ उत्पन्न करता है और हर भाव-विषयक विकार रासायनिक दबाव को जन्म देता है। इस तनाव और दबाव की भीड़ में लोग चले जा रहे हैं। आपकी प्रयोगशालाओं को हमने देखा तथा विज्ञान-कक्ष को देखा। आप जैसा प्रयास करते हैं, पाँच मिनट के एकान्त का, उसे भी देखा। यह भी प्रयोगशाला है। उसमें अपने आपके साथ बैठकर अगर आप देखेंगे तो यह पता चलेगा कि यह आने वाला जो वेग है, इसको ऋषियों एवं मुनियों ने विकार क्यों कहा? भाई! ये जो विकृतियाँ हैं, ये आत्मबल की हानि करती हैं।

जिनको आत्मबल की उपासना करनी है, वे संयम में, अनुशासन में रहें। यह क्यों कहा गया है कि झूठ मत बोलो, क्योंकि झूठ बोलना पाप है। यह कहने और लादने की वस्तुयें नहीं हैं, समझने-समझाने की हैं, क्योंकि मनुष्य विज्ञान के युग में अवैज्ञानिक ढंग से जी नहीं पायेगा। अवैज्ञानिक ढंग से जीने वाले समाज में मनुष्य नहीं रह सकता है। विज्ञान का इतना बड़ा दावा चला आ रहा है। इसलिए समाज में संश्लिष्ट इकाई के रूप में रहना है, तो समाज के नागरिक शरीर व मन को अनुशासन में रखें। वाणी को सयम में रखें। मन को समर्थ बनाने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मैं इसको शिक्षण का अविभाज्य अंग समझती हूं। मुझको मालूम नहीं है कि छात्रवर्ग को इसके लिए अवकाश मिल सकता है या नहीं। १५-२० मिनट के लिए प्राध्यापक-वर्ग एक साथ एकान्त में बैठे। छात्र-वर्ग भी ऐसा करें तो इस प्रकार आत्म-परिचय होगा। शरीर का, मन का और वाणी का परिचय। अपने ही बल पर स्वतन्त्रतापूर्वक केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकान्त में बैठकर निरीक्षण करने से आज के समय में कैसे हो सकता है ? हम कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि कहाँ है वे गुरुकुल ? कहाँ हैं वे पहले के संस्थान ? और कहाँ हैं संतों के मठ-मन्दिर या आश्रम ? जहाँ ज्ञान के लिए लड़के और लड़कियाँ शान्त वातावरण पायेंगे, चित्त को शीतलता देंगे। जो हैं भी, वहाँ स्पर्धा है, महत्वाकांक्षा है और वहाँ भी झगड़े हैं। वहाँ एक अलग प्रकार का संसार खड़ा किया हुआ मिल रहा है।

आज धर्म-संस्थाओं के नाम पर जो संस्थायें हैं और उनमें जो प्रदूषण हैं, उनको देखकर मेरे भीतर तो आँसू बहते रहते हैं। आज के भारत में सत्संग करने के लिए कहाँ जायेंगे, जहाँ उनकी स्वाधीनता छीनी नहीं जायेगी तथा जहाँ उनपर अतिक्रमण सम्भव नहीं है और जहाँ उनके जीवन का, जो उपक्रम है, वह मारा नहीं जायेगा, उनको गुलाम नहीं बनाया जायेगा। ऐसा कहाँ स्थान है, जहाँ उनकी चेतना की जो कलियाँ हैं, उन पर कोई उबलता हुआ पानी न डाल दे और कलियाँ नहीं कुचली जाँय। इसलिए कहती हूँ, अकेले बैठकर, ग्रुप में बैठकर, हो सके तो छात्रालयों में बैठकर, यह जो अभ्यास है आत्म-निरीक्षण का, उसे करें—५ मिनट, १० मिनट बैठकर। जो मुझे कहना था, उसका यह एक अंश हुआ।

अब मैं एक दूसरा विषय प्रस्तुत करना चाहती हूँ। आप सबका जो श्रवण है, उसकी गुणवत्ता को देखते हुए चित्त प्रसन्न होता है। आजकल यदि श्रोता बनने की कृपा करने वाले लोग न हों, तो व्यक्ति वक्ता नहीं बन सकता। वक्ता के वक्तृत्व का जो अनुष्ठान है, सामने बैठने वाले लोगों के श्रोतृत्व पर निर्भर है। श्रोता कृपालु बनना स्वीकार करते हैं, इसलिए वक्तृत्व वक्तृत्व हो सकता है। एक दूसरा पहलू आपके सामने रखने की इच्छा रखती हूँ। जीवन बना है स्थिति और गति दो से। आपके विज्ञान की परिभाषा में गति और स्थिति और हमारी भाषा में सत्ता और गति। 'सत्तामयं शरीरम्'। स्थिति और गति जीवन के दो अंग हैं, जो एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते हैं। शब्द और नाद या मौन कहो अथवा शून्य कहो, जीवन के ये दो अंग हैं, जिनको एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। सम्बन्ध और एकान्त जीवन बना हुआ है एकान्त और सम्बन्ध से। क्षण आते हैं, जब हम नितान्त एकाकी रह जाते हैं। एकान्त के क्षणों का यदि विस्तार होने लगे तो मैं समझती हूँ कि मनुष्य को मृत्यु का भय लगने लगेगा, क्योंकि वहाँ अकेले ही चलना होता है, कोई साथ नहीं जा पाता।

आनन्द के क्षण होते हैं। आनन्द के क्षण को तथा आनन्द की भावनाओं को शब्दों में बाँध सकते हैं। लेकिन आनन्द और प्रेम की अनुभूति के जो क्षण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, जब व्यक्ति एकाकी हो, एकान्त में रहने का भय हो तो मनुष्य सम्बन्धों में जी नहीं पायेगा तथा सम्बन्धों का विरोध करेगा। दूसरों के गले में अपने आपको डाल देगा। विशेषकर आपकी भाषा में वह आश्रित बन जायेगा और दूसरे के बिना जी नहीं पायेगा। या तो रति या प्रेम करोगे अथवा रति या आसक्ति करोगे अथवा दूसरे को देखकर चिपक जाओगे। अनुकूल हो तो चिपक पड़े, प्रतिकूल है तो उससे विरक्त हो गये; उससे हट गये। सम्बन्धों में मन में अनुकूल या प्रतिकूल का एक पूर्वाग्रह बन जाता है। यदि इसी प्रकार पूर्वाग्रह के कारण अनुकूल या प्रतिकूल विचार बन जाय, तो हम संबन्धों में जीने लायक नहीं रह जाते। मुझे कहना है कि सम्बन्ध गति का प्रतीक है; शब्द का प्रतीक है। जीवन स्थिति एवं गति दो से बना है। हमें क्या सीखना है? विद्यालयों-महाविद्यालयों में पढ़ने आते हैं, तो जीवन में से हमें क्या सीखना है? जब गति की आवश्यकता होगी तो हम गति में अपनी गति मिला सकें। जीवन निरन्तर बहती हुई गति की गंगा है, परम पावनी गंगा है। यह गति की अनन्त गंगा है। गतियों के स्वरूप अनन्त ऊर्जाओं की गतियाँ हैं। इसका जब आगे चलकर अभ्यास करेंगे, तो पता चलेगा कि जीवन में असंख्य ऊर्जायें प्रवाहित हो रही हैं।

मनुष्य के पास दस-पाँच ऊर्जाओं का ज्ञान नहीं आया, बोध नहीं हुआ कि इतना घमण्ड है कि क्या कर लिया? क्या शेर मार लिया? दस-पाँच को अभी मुश्किल से कुछ जानना हुआ होगा। शरीर, वाणी और मन के स्तर पर अभी तो कितनी ही गतियाँ अज्ञात पड़ी हुई हैं, जिनकी खोज बाकी है। 'क्रान्ति के अन्तिम शब्द अभी नहीं कहे गये हैं और अन्तिम शब्द कभी कहा भी नहीं जा सकता,' क्रान्तिकारी कहते हैं। वैसे ही 'विज्ञान में अभी अन्तिम शब्द नही कहा गया है और अन्तिम शब्द कभी कहा भी नहीं जायेगा।' विज्ञान वह आत्म-विज्ञान भी है और पश्चिम का पदार्थ-विज्ञान भी है। उसमें नयी-नयी खोजें होती ही रहेंगी। इस प्रकार यह मानव-जीवन अनेक सम्भावनाओं से भरा हुआ एक दिव्य वातावरण है। हमें सीखना है कि हम गति में गति मिला सकें और जब स्थिर रहना हो, तो स्थिर रह सकें। आप कहेंगे—स्थिति कौन सी बड़ी बात है; गति के साथ गति मिलाना, सम्बन्धों में जीना कौन सी बड़ी बात है। हम जी नहीं पाते। कोई व्यक्ति मिले; उन्होंने दो-चार बातें की; तारीफ की या उनसे आप के विचार मिलते हैं या उनकी भावनाएँ मिलती हैं या आपकी जो बातें हैं, उनसे मिलती-जुलती हैं, तो तत्क्षण उनके लिए एक अनुकूलता पैदा कर सकती हैं। अनुकूलता पैदा होना एक स्वाभाविक बात है। लेकिन अनुकूलता में रस आने लगा, तो उसमें चिपक पड़े।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि किसी ने अपमान किया, तो हमारा चित्त ऐसा फट जाता है कि उसके साथ कुछ बात करना या जिस प्रसंग के कारण वह व्यक्ति और हम साथ हुए थे या फिर प्रभु ने इकट्ठा किया था, उस प्रसंग को भी हम भूल जाते हैं। कुछ किसी ने कह दिया, अपमान हुआ तो अन्यमनस्क हो गये। व्यवधान आया बीच में और क्रोध आ गया, तो क्रोध हावी हो गया और उस व्यक्ति के साथ का जो सम्बन्ध है, वह केवल गौण ही नहीं, उपेक्षणीय ही नहीं, अपितु तिरस्करणीय बन गया। क्या कहें, आज समाज में अनन्त प्रकार के, अनन्त स्वभावों के तथा अनन्त संस्कारों के लोग हैं और हममें ऐसी परिस्थितियाँ बनती रहेंगी, देखते रहना। मिर्च तीखी होती है। मिर्च को कहेंगे कि आम की तरह मीठे क्यों नहीं होते? नीबू को कहेंगे खट्टा क्यों हो? कुछ लोगों के स्वभाव नीबू की तरह खट्टे होते हैं, कुछ लोगों के मिर्च की तरह तीखे होते हैं और कुछ लोगों के मिश्री के समान मधुर होते हैं। इस प्रकार स्वभाव अनेक प्रकार के भरे पड़े हैं। स्वभावों की विभिन्नता कैसे बनती है? इसका अध्ययन करना आयुर्वेदाचार्यों का कार्य है, वे इसको समझावें। आयुर्वेद एवं अन्य शास्त्रों के पास स्वभावों की अनेकता के अनेक वैज्ञानिक उत्तर पड़े हैं।

इतने लोगों के साथ हमें रहना है, तो अनुकूलता और प्रतिकूलता के ये जो द्वन्द्व हैं, उनके बीच निर्द्वन्द्व-भाव से हम जी सकें। जिस समय किसी ने अपमान कर दिया या उपेक्षा कर दी, तो दुःख होगा अपमान से; दुःख होगा उपेक्षा से। किसी ने बुरा भला कहा तो दुःख होगा। यह संवेदनशीलता है, लेकिन यह इतना हावी नहीं हो जाय कि उस संबन्ध में गति पकड़ने का हमारा जो कर्तव्य है, उससे हम भटक जाँय। मैं कहना चाहती हूँ कि हमारी इन्द्रियाँ, हमारी भावनायें, हमारे दुर्बल कदम संबन्धों में हमको जीने नहीं देते। हम अटक जाते हैं। कल उस व्यक्ति ने ऐसा कहा, तो आज वह आकृति सामने आयी। हम घर में भी पड़े हैं और वह आकृति सामने बनी है। हम उसे देखना सह नहीं पाते। उसके साथ जी तो पाते ही नहीं; इसलिए गति में रुकावट पैदा होती है। गति के साथ गति और लय के साथ लय मिलाना, यह जो महारास चल रहा है, गति और स्थिति का, उसमें जी पाना हमें विद्यालय में सीखना है। अपनी परिस्थितियाँ प्रतिकूल भी बनें तो अनुकूलता और प्रतिकूलता में आप संवेदनशीलता द्वारा इतना अभिभूत न हो जायँ कि गति के समय वह आपको रोक दे।

एक दूसरी बात मैं कहती हूँ कि कभी-कभी ऐसे भी क्षण होते हैं, जब आप को स्थिर रहना चाहिए। स्थिरता में विश्राम है। जिस प्रकार जीवन में ऐश्वर्य का दर्शन है, उसी प्रकार स्थिति में स्थिरता के ऐश्वर्य का दर्शन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५-१० मिनट के समय में शान्ति से बैठना मन को विश्राम देना है; प्राण को विश्राम देना है। जब हम सोचने लगते हैं, तो मन चलने लगता है। कल क्या हुआ ? आज क्या होगा ? आनेवाले कल को क्या होगा ? परसों क्या होगा ? तो विश्राम का जो समय है, उसमें काम करने लगे। स्थिर नहीं रह पाते। इसलिए निस्तब्ध विश्राम होना चाहिए। हमारे स्नायुओं में, पेशियों में वह नहीं रह पाता। बोलने की जरूरत न हो, तो मौन की गोद में विश्राम लें। संबन्धों का समय नहीं है—वह प्रत्याशित नहीं है—तब हमें एकान्त में निर्भय होकर पड़े रहना चाहिए। इस प्रकार एकान्त तथा एकान्त के जीवन की जो सत्ता है, मौन में या शून्य में, शून्य की नीरवता में जो शक्ति है और गति एवं स्थिरता में जो शक्ति है, उसको प्राप्त करना चाहिए। इसलिए विषय को मैं समाप्त करती हूं। हमारे जीवन ने जितने असंतुलन हैं, वे शब्द में, नाद में तथा भाव की श्रुति में उलझे पड़े हुए हैं, इसलिए जीवन में असंतुलन है। हम संबन्धों में उलझ जाते हैं, कार्यों में उलझ जाते हैं। एकान्त में, एकान्त की जो मौज है, उसका जो आनन्द है, उसे हम लूट नहीं पाते. तो हमें जीवन का विज्ञान सीखना है। हमें जीवन की स्थिति और गति, शून्य और नाद, मौन और शब्द, एकान्त और संबन्ध सभी अवस्थाओं में स्वस्थतापूर्वक जीने की कुशलता प्राप्त हो।

आज के समय में उत्तर प्रदेश भारतवर्ष का सबसे बड़ा भौगोलिक प्रदेश है। यह विस्तार की दृष्टि से तथा जनसंख्या की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रदेश है। इसका इतिहास भी बड़ा भव्य एवं दिव्य है। यहाँ पर ही रामायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता-जैसे ग्रन्थ लिखे गये। यह ऋषियों की भूमि रही है, सन्तों का निवास रहा है और वीरों एवं क्रान्तिकारियों की भी भूमि रही है। उसमें देवरिया जिले की बात ही क्या करनी है ? ऐसे क्षेत्र में बैठी हुई हूं। आशा करती हूं कि यहाँ का जो विद्यार्थी है और यहाँ का जो यौवन निकलेगा, वह स्वस्थ निकलेगा। स्वस्थ बनने के लिए तन, मन और वाणी, जो तीनों स्तर हैं, उन तीनों स्तरों को वैज्ञानिक दृष्टि से देखना, उनके साथ संयमित उठना-बैठना, रस लेना और उनके साथ संबन्ध जोड़ना आवश्यक है। जीवन में स्थिति-गति का जो रास चल रहा है, उसको पुराने सन्तों की भाषा में 'शिवशक्ति' का रास कहेंगे। सत्ता और शक्ति तो ऊर्जा-रूप है ही। राधा जी गति-रूप में हैं और माधव जी सत्ता-रूप में हैं। इस प्रकार यह जीवन का परम पावन सम्बन्ध है। इन दोनों का सम्बन्ध हमारे शरीर से कैसा है, इसको देखना हम सीखें। इसे सीखना हमारा धर्म है।

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ :

राष्ट्र-निर्माण-यज्ञ में दायित्वों का हव्य

प्रभात की सभा में हम लोग सह-चिन्तन करने बैठे हैं। राष्ट्र-निर्माण में जनता एवं सभी वर्ग किस प्रकार पूर्णाहुति कर सकते हैं और किस प्रकार अपनी जिम्मेदारियाँ निभा सकते हैं? १९४७ तक यह देश राजनैतिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं रहा, तो राष्ट्र-निर्माण में कोई भूमिका अदा करनी नहीं थी, लेकिन स्वाधीनता के बाद इस देश के मनीषी लोगों ने बैठकर इस देश का संविधान बनाया। संविधान बनाने वाली जो सभा थी, उसने एक-एक करके सभी वर्गों को जिम्मेदारी दी—राष्ट्र-निर्माण में सहयोग करने की। संविधान बन गया कि इस देश में लोकतन्त्र कायम होगा, लोकतान्त्रिक व्यवस्था कायम होगी और हर बालिग व्यक्ति को मतदान का अधिकार होगा। लोकतन्त्र का, गणतन्त्र का, जनतन्त्र का अर्थ है कि सार्वभौम सत्ता जनता में निहित रहे।

मतदान का अधिकार हरेक को रहे, जिससे सारे लोग सत्ता में शरीक रहें। संसार में जिम्मेदारी के बिना कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं होता है। अधिकार अपने साथ-साथ जिम्मेदारी ले आते हैं। स्वाधीनता भी अपने साथ जिम्मेदारियाँ ले आती है। जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकार लोकतन्त्र है। लोकतन्त्र या लोकतान्त्रिक व्यवस्था जीवन-शैली है। केवल शासन-व्यवस्था का नाम लोकतन्त्र नहीं है। जनता यह न भूले कि उसकी भागीदारी सरकार के साथ-साथ शासन के साथ है, क्योंकि सार्वभौम सत्ता जनता के हाथों में आ गई है। जनता से मेरा आग्रह है कि आधी जनसंख्या नारी-वर्ग की है। उनकी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं। इनको नागरिक अधिकार मिलें हैं। पुरुषों के साथ-साथ नारी-वर्ग को कंधा मिलाकर देश-निर्माण का काम करना है।

सन् १९४७ ई० के बाद जो एक परिवर्तन आया, एक क्रान्ति सामाजिक जीवन में आई—वह थी लोकतांत्रिक व्यवस्था का संचार। संसार में यदि कोई सबसे क्रांतिकारी व्यवस्था हो सकती है; तो वह है लोकतन्त्र। लोकतन्त्र यदि यथार्थ बन जाता है, चरितार्थ बन जाता है, तो क्रांतिकारी व्यवस्था है। जिनके अधिकार हैं और उत्तरदायित्व हैं, उन्हें संयम की शिक्षा लेनी पड़ती है। आत्मानुशासन की शक्ति उन्हें प्राप्त करनी पड़ती है। उसके बिना वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सफल नहीं बन पाते। लोकतांत्रिक व्यवस्था में वह सम्मिलित नहीं हो पाते हैं। ध्यान रहे कि १९४७ ई० के बाद राष्ट्र-निर्माण की जिम्मेदारी हम सबके ऊपर है। इसी का नाम स्वाधीनता है। लेकिन हम तो गुलाम निकले। गुलाम का अर्थ है—कोई हमें रोजी दे, रोटी दे, सुरक्षा दे और सब जिम्मेदारी रोजी-रोटी देने वाले की हो। यह एक गुलाम की प्रवृत्ति होती है, जो जिम्मेदारी से कतराता है। देश पराधीनता की प्रवृत्ति से अलग हुआ ही नहीं। राष्ट्र-निर्माण में, राष्ट्र की स्वाधीनता की नींव जन-मानस में रखने का काम जो अभी तक बाकी है, वह हमें करना है। सबके पास गाँव-गाँव में घूम कर जनमानस में इसका भान कराने की आवश्यकता है कि हर कोई स्वाधीन है। स्वाधीनता एक पवित्र वस्तु है, हजारों, लाखों, करोड़ों नागरिक स्वाधीन हैं, तो वे सब राष्ट्र-निर्माण में भागीदार बनें।

अब दूसरी चीज पर ध्यान दें। आप ने मार्क्स का नाम सुना होगा। जो लोग मार्क्स को नहीं जानते, वे कभी गांधी जी को समझ नहीं सकते। उसके बाद गांधी जी आये हैं। उन्होंने क्या स्वप्न देखा? बड़ा भव्य, बड़ा दिव्य कि राज्य-सत्ता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समाज को हम शोषण-मुक्त बनायें। यह जो गरीबी और अमीरी की इमारत है, जो मनुष्य के कारण बनी हुई है, मनुष्य की व्यवस्था के कारण हम इसको हटायेंगे और जब ये उत्पादन के साधन दे देंगे और शोषण नहीं रहेगा तो शासन की आवश्यकता भी घटती ही चली जायेगी। इसीलिए राज्यमुक्त शासन के, मुक्त समाज में सपने देखे मार्क्स ने, लेनिन ने। रामराज्य के सपने देखे गांधी ने। आज वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। संसार के समाजवादी देशों में सरकारें क्षीण होती चलीं गयीं हों ऐसा नहीं हुआ और लोकतान्त्रिक, समाजवादी, साम्यवादी देशों में अभी भी जो शोषण की जड़ मनुष्य के चित्त में है, उसे मानव-जाति उखाड़ फेंकने में सफल नहीं हुई।

यह भूमिका इसलिए आपके सामने रखी गयी कि भारतवर्ष में एक तरफ जनता, तो दूसरी तरफ कोई न कोई शासन करने वाली सरकार रहेगी। सरकार और जनता के बीच एक शासक-वर्ग रहेगा, जिसको कर्मचारी-वर्ग कहते हैं। तब तक सरकारें रहेंगी, जब तक शोषण-मुक्त समाज नहीं बना पाते। इसमें प्रशासन की पद्धति बदलती चली जाती है। उसमें जो राज्य-पद्धति के प्रेरक तत्त्व हैं, इनके मूल्यांकन हैं, इनकी आचार संहिताएँ है, वे पूँजीवादी देश में एक प्रकार और समाजवादी देश में दूसरे प्रकार हैं। ये देश आज नहीं कल सर्वोदयी देश बनकर रहेंगे। गाँधी-जीवन-दर्शन पर आधारित होंगे। इसमें कोई सन्देह इसलिए नहीं है, कि यह एक अद्यतन वैज्ञानिक जीवन-दर्शन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाँधी के व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ है, इसलिए नहीं, बल्कि वह वैज्ञानिक है इसलिए। पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद और गाँधी-जीवन-दर्शन तक की जो व्याख्या संसार ने की है, मानव-जाति ने की है, उसमें मनुष्यों पर शासन करने के भाव से हटते-हटते मानवीय सम्बन्धों की व्याख्या करने वाली संस्था बन जाती है। वह मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था करती है, न कि मनुष्य पर शासन करती है।

आज संसार की दौड़ है—शासन की तरफ से अनुशासन की ओर। यह एक ऊर्ध्वगामी आकांक्षा है। जनमानस के चित्त में कहीं न कहीं यह मुखरित होगी तो सरकारें कहेंगी कि इस बात को हमें सोचना चाहिए कि जनता में क्यों गरीबी है? जनता में दो प्रतिपक्षी हैं—एक शासक है तो दूसरा शासित है। एक को दूसरे से बचना है। यह भारत है बचने की भावना नहीं है। यदि जनता मचल जाय या सरकार मचल जाय तो लोकतन्त्र जी नहीं पायेगा। इसमें परस्पर विश्वास और सहयोग का वातावरण निर्माण करना पड़ेगा। आप कहेंगे, हम कैसे निर्माण करें? निर्माण करने की चाभी हमारे हाथ में है। यदि मतदान के अधिकार को पवित्र भावना से, जो अपने को स्वाधीन रखने की सक्षम कुञ्जी है, इसका उपयोग योग्यता से होता है, निर्भयता से होता है तो जो भी सरकारें, जो भी शासक-वर्ग हमें मिलेंगे, वे हमारे लिए सहायक सिद्ध होंगे। आवश्यकता है कि सब एक दूसरे को प्रतिपक्षी न मानें।

स्पर्धा से नहीं, बचाव से नहीं और भय से नहीं, परस्पर सहयोग से वातावरण का निर्माण होगा। इस देश के नागरिकों के सामने एक बड़ी ही दरार पैदा हो गई है। फिर भी परस्पर दोनों ओर से विश्वास की भूमिका चल रही है, शासक-वर्ग के चित्त में जनता के लिए और जनता के चित्त में शासक-वर्ग के लिए। गांधी जी तो, जिन लोगों की सत्ता उस समय थी, उन पर भी विश्वास करते थे। उनके असह्य कार्य भी उनके लिए सहायक होते थे। हमें परस्पर सहयोग करना चाहिए, इस तथ्य को, इस सत्य को ग्रहण करें और इसपर परस्पर सहयोग का वातावरण कैसे बनायेंगे, इसको सोचें। जो निर्भय होता है, वही किसी के साथ सहयोग कर सकता है। जो निर्भय होता है, वही किसी पर विश्वास कर सकता है। निर्भयता का अर्थ आप जानते होंगे। १९५५ ई० की बात है—कोल्हापुर जिले में सन्त विनोबा जी के साथ मैं यात्रा कर रही थी। साधन के बिना पैदल ही १०-१५ मील तक चलना पड़ता था। सुबह साढ़े तीन बजे जगकर १४-१५ मील चलना रहता था। प्रभात हो ही रहा था, कि एक गाँव में पहुँचे। सामने वाले घर के बरामदे में एक पिंजरा रखा था। उसमें एक तोता था। विनोबा जी रुके और पूछ बैठे कि यह क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है ? हमने कहा—पिंजरा है। उन्होंने कहा—उसमें क्या रखा है ? तो हमने कहा—तोता। वे बोले—हिन्दुस्तान के गाँवों में घर-घर गुलाम बनने की भावना भरी है, क्योंकि सबके घर में तोता पिंजड़े में बन्द है। तब मैंने कहा, बाबा ऐसा क्यों कहते हैं ? यह तो किसी अनजान आपत्ति या कोलाहल से घर के मालिक को अवगत कराता है। उन्होंने कहा—जो आदमी शील और लाज नहीं रखता है और किसी को गुलाम नहीं बनाता है, वही आदमी निर्भय होता है। आज हम तोते को गुलाम बनायेंगे तो कल आदमी को गुलाम बनायेंगे। निर्भय और बहादुर आदमी वह है, जो किसी के सामने झुकता नहीं है और किसी को झुकाता नहीं है। जो निर्भय है, वह किसी से डरता नहीं है और किसी को डराता नहीं है। विनोवा जी के संयम-विद्यालय में हमने जीवन की शिक्षा ली है। आजादी का अर्थ है—परस्पर सहयोग। परस्पर सहयोग के लिए और परस्पर स्वस्थ वातावरण के लिए निर्भयता जरूरी है। इस निर्भयता को हमें सीखना होगा। तब सरकार और जनता के बीच परस्पर सहयोग और विश्वास की भावना बढ़ेगी।

तीसरी बात शासक-वर्ग, अधिकारी और कर्मचारी की है। वे लोग तो लाखों हैं। अब स्वाधीनता के बाद राष्ट्र-निर्माण में उन सबका उतना ही महत्त्व है और होना भी चाहिए, जितना हम सबका है। उनको और सम्मानित नागरिकों को यह ज्ञात होना चाहिए कि स्वाधीन भारत में और लोकतन्त्र में सारे अधिकार जनता में हैं। हमें जनता ने बैठाया है और हम भी जनता ही हैं।

जिस पद्धति में हम हैं, उसको उन्हें सिखाया ही नहीं गया है। उनके सच्चे मार्ग क्या हैं, यह उन्हें बताया ही नहीं गया। इसलिए निर्देशन के अभाव में जनता और अधिकारी के बीच एक खाई बनी हुई है। वह खाई नहीं बननी चाहिए। राष्ट्र-निर्माण में अधिकारी एवं जनता के बीच परस्पर सहयोग एवं विश्वास बना रहना चाहिये, क्योंकि राष्ट्र-निर्माण के लिए जनता के कार्य अलग होंगे और अधिकारियों के लिए अलग होंगे, ऐसी बात तो नहीं होगी। राष्ट्र-निर्माण के लिए सबके लिए एक आदेश होगा। यदि राष्ट्रीय चेतना, शान्ति की भावना, एक दूसरे के प्रति समझ और राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो जाय, तो जनता और अधिकारियों के बीच सामञ्जस्य हो जायेगा।

राष्ट्र-निर्माण के लिए चौथी चीज, जिस पर विचार होगा, वह है अविश्वास। ऊँच-नीच का भेदभाव छोड़ना होगा। यह अधिकारी और जनता की बात नहीं है, शासक और शासित की बात नहीं है, बल्कि हम सबका लक्ष्य है—कोई भी कार्य हम करें, लेकिन यह ध्यान रहे कि हम इस देश के नागरिक हैं। झाड़ू लगाने वाले से लेकर मंत्री की कुर्सी पर बैठने वाले सभी देश के नाग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिक हैं। यदि सबमें यह नागरिकता की भावना आ जाय तो राष्ट्र-निर्माण का सही वातावरण बन गया।

इस प्रकार, जो भय का वातावरण है, वह समाप्त हो जाय और सब लोग अपनी बस्तियों में राष्ट्र-निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दें, तो निश्चित ही यह एक शुभ लक्षण है। इस देश में गरीबी की रेखा के नीचे ४० से ४५ फीसदी तक लोग रहते हैं, जैसा कि संगणना से ज्ञात है। तब आप बतावें कि स्वाधीनता कैसे सुरक्षित है? राष्ट्र-निर्माण का कार्य तब होता है, जब कम से कम सभी लोगों को अपनी रोजी-रोटी कमाने का साधन मिले और देश की जनता को रहने की झोपड़ी और खाने को नमक-रोटी मिले। जहाँ हम आश्रम चलाती हैं, वहाँ हमने ५० गाँवों के प्रमुखों को बुलाया और कहा कि आप लोगों के गाँवों की जो समस्यायें हैं, उन पर ध्यान दें। सायं थोड़ी देर बैठें, हमलोग भी बैठेंगे और गाँव के लोग भी अपनी-अपनी समस्याओं को लायेंगे। हम उनका निराकरण सुझायेंगे। कहने के लिए कहा गया, तो किसी ने कहा—गाँव में दो मील कच्ची सड़क है, जरा पक्की बन जाय; तो किसी ने कहा कि गाँव में पीने के पानी की व्यवस्था कर दें, पानी की व्यवस्था हो जाय; तो कोई कहता कि विकास की योजना बन जाय। यह सब सुनकर हमें ज्ञात हुआ कि इन सबके लिए कोई बहुत धन की आवश्यकता नहीं है। लोग श्रमदान के लिए तैयार थे। इस देश की जनता, जो ऋषियों-मुनियों की सन्तान है, उसके पास कोई ज्यादा आवश्यकता भी नहीं है। इनको गरीबी और भुखमरी से मुक्त कराना ही राष्ट्र-निर्माण का पहला कदम होगा।

छः लाख गाँवों में पीने के पानी की व्यवस्था हो जाय। ये रोजी-रोटी कमाने यानी स्वयं रोजगार पैदा करने की क्षमता रखते हैं। यह देखा जाय कि कितने लोग स्वयं रोजगार पैदा कर सकते हैं। उन्हें उत्पादन के साधन उपलब्ध कराये जायें। लोग ग्रामोद्योग में जायेंगे, विज्ञान में जायेंगे और यहाँ तक कि सौर ऊर्जा में भी पहुंच जायेंगे, लेकिन गाँव को उठाकर बैठा देना होगा। जो लोग दीन-हीन बन गये हैं, उनकी स्वाधीनता को, उनकी सत्ता को, लोकतन्त्र को सुरक्षित रखें, तो देश आजाद रहेगा और जब हम उन छः लाख गाँवों को पीने का पानी प्राप्त करायेंगे, तो राष्ट्र-निर्माण का कार्य प्रारम्भ होगा। हम जहाँ भी हों, सबका कर्तव्य हो जाता है कि नागरिकों, अधिकारियों तथा सरकार का व्यापार बढ़े और उद्योग बढ़ें। जो भी हो, जो बुद्धिजीवी हों, उनके पास जो भी साधन हों, वे उनसे उत्पादन बढ़ायें, जो भी सुविधा हो, उसे करें। तब हममें राष्ट्र-निर्माण की आकांक्षा होगी। हमें अनुष्ठान करना होगा। यह एक बहुत बड़ा धर्म है। संकल्प करो, दस वर्ष के भीतर हम इस देश से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भुखमरी और बेकारी भगा देंगे। यह जीवन-स्तर उठाने की माँग नहीं है; यह दूरदर्शन की माँग नहीं है। यह बड़ी ही सीधी-सी माँग है—रहने के लिए झोपड़ी, खाने के लिए रोटी और रोटी जुटाने के लिए साधन, जो गांव में रहकर जुटाये जा सकते हैं। जहाँ करोड़ों के पेट में भूख की आग होगी, वहाँ सांस्कृतिक मूल्यों का उत्थान नहीं होगा और उस देश का नैतिक उत्थान भी नहीं हो पायेगा और राष्ट्र-निर्माण के सपने पूरे नहीं होंगे। यदि करोड़ों लोग इस देश में भूखे और नंगे रहेंगे तो नीति के उपदेशों से काम नहीं चलेगा, प्रवचन करने से काम नहीं चलेगा। कौन नहीं चाहता है सच बोलना, कौन नहीं चाहता है प्रेम से रहना, परन्तु हो नहीं पाता है, क्योंकि भूख की ज्वाला छः लाख गाँवों में और कुछ शहरों में जल रही है, इसलिए उनके मन में ईर्ष्या पैदा होती है।

एक घटना याद आ गयी। एक बड़े आदमी थे। हमारे नाना को छत्तीस गाँवों की जागीर थी। बड़ा सा महल था। एक रात डाका पड़ा। महल में चोरी हुई। लाखों का सामान चुराया गया और नाना जी अपनी पूजा में व्यस्त थे। जब पूजा समाप्त हुई, तो बाहर निकले और शान्त भाव से पूछे, "भाई क्या बात है ? प्यारे, मुझे क्यों जगाया गया।" लोग कहने लगे, "इतना बड़ा डाका पड़ गया और आप ऐसे ही सोये पड़े रहेंगे क्या?" वे इतने में बोले, 'अरे ! अच्छा तो कोई मार-पीट तो नहीं हुई ? कहा गया कि मार-पीट नहीं हुई। "डाका डालने वालों को किसी ने मारा-पीटा तो नहीं ?", और तीसरा सवाल पूछा कि किसी ने थाने में जाकर रिपोर्ट तो नहीं की ? तो मामाजी बोले कि अरे डाका पड़ा, रिपोर्ट क्यों नहीं होगी ? उन्होंने कहा—नही प्यारे ! हमने चोरों को कुछ नहीं दिया था। इसलिए हमारे यहाँ चोरी हुई। उन्होंने लड़के से कहा कि, "बेटे, यदि आपसे कोई रात में अँधेरे में भागने को कहे तो आप नहीं जायेंगे तो उनकी मजबूरी थी चोरी करना।" तो मैं कहना चाहती थी कि इस देश में गजब की खाई है गरीबी और अमीरी के बीच में। या तो आप सब पढ़ने-लिखने के बाद कुछ भी बनेंगे—इन्जीनियर बनेंगे, डाक्टर बनेंगे, लेकिन इस देश में जब तक एक भी आदमी भूखा होगा, तब तक मैं लखपति-करोड़पति बनने का सपना नहीं देखूँगा और तभी देश में सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की स्थापना होगी। भ्रष्टाचार सबसे आगे खड़ा है, तो सर्वप्रथम भ्रष्टाचार को हमें राष्ट्र से समाप्त करना होगा। भ्रष्टाचार का एक कारण है—भूख की ज्वाला और इस ज्वाला में सारे नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य खाक हो जाते हैं। भ्रष्टाचार का जन्म होता है।

संक्षेप में कहा जाय कि जब तक भूख की आग में हमारे नैतिक, सांस्कृतिक मूल्य और आदर्श खाक न हो जायें, उससे पहले हम चेत जायें और इस दिशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में आगे बढ़ें, छठीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण कार्य के लिए, ताकि देश में ग्रामीणों का, आदिवासियों का उत्थान हो सके। राष्ट्र-निर्माण में एक बात और है, जिसका हमें भ्रष्टाचार-समस्या के सन्दर्भ में, जो नैतिक ह्रास हुआ है, उसमें जोर देने की आवश्यकता है कि इस राष्ट्र का क्या ध्येय है, लक्ष्य क्या है? विज्ञान का ज्ञान चाहिए, जन्तु-विज्ञान का ज्ञान चाहिए, संसार की सुविधा चाहिए? हमारा लक्ष्य है—देश का विकास करना और लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए हमें ज्ञान चाहिए, विज्ञान चाहिए, शिक्षण-संस्थाएँ चाहिए। हम दिशा-हीन एवं लक्ष्य-हीन बैठे हों, दसो दिशाओं में विभिन्न शक्तियों का उपयोग करने वाला जो हमारा संयोजन-वर्ग है, वह ठीक नहीं है, तो हम कहीं नहीं पहुँच पाते। एक सामाजिक राष्ट्रीय-निर्माण के लिए एक समिति चाहिए, जो सदा तत्पर हो।

जहाँ जीवन की एकता का उद्घोष है, वहीं पहले जीवन की इस समस्या का उल्लेख किया गया। उसके बाद सांस्कृतिक पहलू पर विचार होगा, जो आज इस देश के लिए संकट के रूप में खड़ा है। इसने देश को नरक में डाल रखा है। जिसके पास जो साधन हो, चाहे व्यापारी हो, उद्योगपति हो, सबके अन्दर एक ही धारणा होनी चाहिए, कि आध्यात्मिक राष्ट्र होने के कारण सबका एक ही लक्ष्य होगा—परस्पर सौहार्द बढ़ाना, गरीबी को मिटाना, गरीबों का उत्थान करना, गरीबी और अमीरी के बीच जो खाई है, उसको समाप्त करना। उसे हम इस ढंग से मिटा देंगे कि नैतिक मूल्यों का विकास होगा, मानवता की स्थापना होगी, मानव मानव पर आधारित होगा। ऐसे समाज की रचना के लिए हमें सोचना पड़ेगा, सीखना पड़ेगा। कहना है कि आज संसार के देशों में मानव-आधारित यानी व्यक्ति की स्वाधीनता, उसकी अच्छाई, शक्ति के ह्रास, उसकी परीशानी का मूल, कार्यशक्ति की पवित्रता, मनुष्य तथा पशुओं का सह-जीवन, सहयोग, उत्पादन और उपयोग में साम्य, मनुष्य की उत्कृष्टता, यही मनुष्य की सांस्कृतिक देन है। आज जो नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ, उसका एक कारण है कि सन्तुलन बिगड़ रहे हैं और महत्त्वाकांक्षा की धारणा बलवती हो रही है व्यापार की तरफ, उद्योग-धन्धों की तरफ। इस तरह मनुष्य उपेक्षित बन गया। इन वर्षों में मनुष्य के लिए यह एक अभिशाप है और यदि मनुष्य के कार्य की शक्ति का पालन न हो, तो राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता।

इधर कुछ वर्षों में विदेशों के कुछ लोगों को आँकड़ों के माध्यम से जनता के सम्बन्धों को जानने के लिए विश्वविद्यालयों में भेजा गया। विभिन्न संस्थाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में लोग गये। वे जहाँ भी गये, वहाँ छात्र-वृन्द, अध्यापक-वृन्द और उनके अन्य लोग लगे हुए हैं राष्ट्र-निर्माण में। हर संस्था को त्वरित किया गया है, शिक्षण स्थाओं को सचेत किया गया है, अपने देश की धरती के विकास करने के लिए, अपनी धरती से प्यार बढ़ाने के लिए। इससे जो हमारी शक्ति है, उसका उपयोग होगा राष्ट्र-निर्माण के लिए, यह उनका संकल्प होगा। क्या हमारे देश के लोग यह नहीं कर सकते? अगर हम बाहर देखें और अपनी मर्यादा और अपनी संस्कृति को देखें तो जो सांस्कृतिक और आर्थिक संकट हैं, उनका निदान अपने आप हो गया। सांस्कृतिक और आर्थिक मोर्चे पर देखें कि जनता के जीने का अवसर, किसान से लेकर मजदूर, व्यापारी, उद्योगपति, शिक्षक, शासक और अधिकारी तक सबने सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिए और गरीबी मिटाने के लिए सहयोग का प्रयास किया है। उनके साधन होने चाहिए, गरीबों के, गाँवों के विकास के लिए तो हमें सत्प्रयास करना है। आप सबके पास तो यह सर्जनशील व्यक्तियों के लिए चुनौतियाँ खड़ी हैं। चारों ओर जहाँ तक नजर जाती है, हम चुनौतियों से घिरे नजर आते हैं। चुनौतियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं। राष्ट्र के क्षितिज पर इन्हें विपत्ति कहियेगा या इन्हें आश्चर्य कहियेगा? महात्मा जी ने कहा था कि मैं अहिंसा में विश्वास करता हूँ और अपने को बदल सकता हूँ। इसलिए मनुष्य के लिए कोई विपत्ति है, मैं नहीं कह सकता।

हम सबके भीतर राष्ट्र-निर्माण की गूँज है, लेकिन हम करना नहीं चाहते। सोचते हैं कि ये करेंगे, वे करेंगे, दूसरे करेंगे, तीसरे करेंगे और हम सुख भोगेंगे। वे करेंगे, सम्हालेंगे और हमें सुविधा मिलेगी। जिम्मेदारी उनकी है, हमारी नहीं, यह धारणा मन में आ गयी है। शासक-वर्ग कहता है, जनता कहती है, उसके नेता भी कहते हैं। नेताओं को लगता है, व्यापारी नहीं कर कर रहे हैं। हम लोग अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग ढंग से चल रहे हैं, तो इस प्रकार की धारणा रखने पर राष्ट्र का निर्माण नहीं हो पाता है।

गाँवों और शहरों के बीच गहरी खाई है। गाँवों में शोषण है शहरों के द्वारा, यानी हमको सोचना है कि गाँवों का शोषण क्यों हो रहा है? इसके मूल में क्या है? इसका निराकरण कैसे हो? जब तक गाँवों और शहरों के बीच की खाई समाप्त नहीं होगी, गाँवों का शोषण बन्द नहीं होगा, राष्ट्र-निर्माण नहीं हो सकता। यह कैसे हो सकता है कि भारत के छः लाख गाँवों, जहाँ सारा उत्पादन होता है, जो अन्न-वस्त्र का उत्पादन कर रहे हैं, उनको सुविधाएँ न मिलें। राष्ट्र का सारा धन उन्हीं का है, तो हमें इसके लिए सचेत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहना होगा और हमें जनता-परायण बनना होगा। गाँव लम्बे हैं, आकर्षण के केन्द्र हैं, रोजी नहीं रोटी चाहिए। शर्म करना चाहिए कि गाँव की वस्तुएँ हैं, गाँव की चीजें हैं, वे शहर में जाती हैं तो क्या गाँव उपेक्षा के पात्र हैं? क्या गाँव को शहर नहीं बनाना चाहिए? गाँव एवं शहर को परस्पर पूरक बनाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए? राष्ट्र-निर्माण में इन्हें एक दूसरे का पूरक होना चाहिए। इसलिए राष्ट्रीय प्रवृत्ति होनी चाहिए। गाँव और प्रति गाँव राष्ट्र-निर्माण में अत्यधिक सहयोग देते हैं। विकास तथा अन्य सभी चीजें गाँव पर ही निर्भर हैं। इनका महत्त्व बहुत अधिक है। गाँव को टूटना नहीं है। गाँव का निर्माण करना है। गाँव को जोड़ना है। वह विद्यालय है, जो गाँवों को जोड़ता है। हम कुछ पाश्चात्त्य सभ्यता के साथ जब अपने को जोड़ते हैं, तो गाँव छूटते दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हम ऐसी व्यवस्था प्रदान करें कि गाँव और शहर में एक सामंजस्य स्थापित कर सकें। उनके दुःखों की चर्चा करके हम देखेंगे, विश्लेषण करेंगे तो उसमें से आत्मग्लानि और लाचारी के सिवा और किसने इस देश को बिगाड़ा, उनके प्रति एक निम्न भावना के सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ेगा। क्या कटुता कम है? कठिनाइयाँ कम हैं? तो फिर हम क्यों एक मानसिक कठिनाई पैदा करें?

ब्रिटिशों ने जब अपना साम्राज्य कायम किया, उससे पहले भले यह देश राजनैतिक दृटि से इतना विकसित न रहा हो, आज राजनैतिक या राज्य-शासन की परिभाषाएँ बदल गयी हैं लेकिन सांस्कृतिक दृष्टि से यह हमेशा समृद्ध रहा है। उस समय सांस्कृतिक एकता की एक भावना थी, जो आज टूटती चली जा रही है। राष्ट्र-निर्माण की बात करनी है और हमारे रिश्ते टूटते जा रहे हैं। राष्ट्रीय एकता की भावना टूटती चली जा रही है। आज से दो-चार दिन पहले की बात है। कुछ लोग आये। बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और मिलने आये थे, बोले कि हम लोग राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए एक संगठन बनाना चाहते हैं। हम लोग विनोबाजी के पास भी गये थे। आपके पास पहुँचे हैं। अगर आप लोग नेतृत्व करना स्वीकार करें तो आगे कुछ सोचा जाय। मैंने कहा कि आप लोग यहाँ आये हैं, बड़ी कृपा है। मैं तो यह कहूंगी कि आप राजनैतिक दलों के पास जाइये और लिखवा कर लाइये कि चुनाव के लिए, सत्ता प्राप्त करने के लिए हम जातिवाद, कौमवाद, पृथक्‌तावाद को बढ़ायेंगे नहीं और सारे राष्ट्र को अपना समझेंगे और उसको ऊपर उठायेंगे, हम किसी को फँसा करके अपना कार्य सिद्ध नहीं करेंगे और यदि लोग झगड़ा फँसाते हैं या उत्पन्न करते हैं तो उसको रोकें तो मैं समझती हूँ कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रीय एकता के लिए आप कुछ कर सकते हैं, नैतिक मूल्यों को आप जोड़ सकते हैं और सांस्कृतिक एकता की भावना—असम में रहने वाले लोग और विभिन्न भागों के लोगों में राष्ट्रीय एकता हो सकती है। महापुरुषों ने बड़ा भगीरथ प्रयत्न किया है। महाराज जजनकाथ ने कन्नड़ में भागवत लिखा, रामायण लिखा तो क्या उससे राष्ट्रीय एकता की भावना नहीं जगती है, संस्कृति की भावना नहीं जगती है? धन्य है यह भारत, धन्य हैं यहाँ के देवता जिन्होंने भी विचारधाराएं दी हैं। राष्ट्र-निर्माण की धारा में शामिल न होना–यह राष्ट्र-निर्माण के भाव-रूप को बिगाड़ने का प्रारूप है।

अपने गाँव में, अपने परिवार में जातिवाद, सम्प्रदायवाद और धर्मवाद को हम पनपने नहीं देंगे। उसमें सहयोग नहीं देंगे, यह राष्ट्रीय संकल्प है, जो राष्ट्र-निर्माण के लिए बीज का कार्य करेगा, उसके लिए हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं और यदि सबके संकल्प एक साथ हो जायें, एक दिशा में हो जायें तो इस देश को बनाने में बहुत देर नहीं होगा। इस देश में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध, आस्तिक, नास्तिक हैं—सब एक साथ मिलकर कार्य करें तो देश को बनाने में बहुत देर नहीं लगेगी, काम बहुत जल्द ही पूरा किया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चम :

शिक्षा और संश्लिष्ट समाज-रचना

अवश्यम्भावी है भारत का भाग्योदय। संयोग से ही ऐसे लोगों के दर्शन होते हैं और मंगलकारी वाणी उनके (श्री चन्द्रभूषणधर द्विवेदी, आई० ए० एस०) श्रीमुख से सुनने को मिलती है। जैसा कि अभी हमने सुनी, ऐसी विनय-सम्पन्न यह वाणी! आज जो देश की परिस्थिति है—संकटमय परिस्थिति से देश गुजर रहा है, उसका भान और उसमें क्या होना चाहिए, उस दिशा का बोध, ये दोनों चीजें शुभ-सूचक हैं। ऐसा हमें लगता है कि आजकल शिक्षा में चलने वाली गति कुछ कम है। लेकिन, मेरा तो कहना है, मेरी उसमें कोई गति न होते हुए भी आकर आप लोगों के बीच में बैठ गयी। बहन के नाते जो सूझता है, वह आपके सामने निवेदन करती चली जा रही हूँ। वैसे तो मैं आज अध्यापक भाइयों एवं बहनों के बीच हूँ।

प्रत्येक कार्य के दो स्वरूप होते हैं, एक होता है—देश-काल-परिस्थिति-सापेक्ष। यह जो अध्यात्मकाव्य है, इसका अध्ययन विद्यालयों, महाविद्यालयों के चौखट में होता हो अथवा विद्यालयों, महाविद्यालयों के बाहर होता हो मानव-जाति के लिए, संसार के सभी देशों में सम्बन्धों के तथा संस्कारों के बनने का जो कार्य है, इसे कुछ लोग सीखते हैं और कुछ लोग सिखाते हैं। इसकी आवश्यकता मनुष्य-जाति के लिए इसीलिए है कि मनुष्य-जाति में छिपी हुई एक परोक्ष-सत्ता है, चिन्मयी सत्ता है। उसकी परिस्थिति के कारण व्यक्ति के अन्दर इच्छा होती है 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' को जानने की। असत्य में रहते हुए भी सत्-चित्—वृत्तियों को देखने की प्यास है। अमंगल, असत् और अप्रिय वातावरण कमजोरियों के कारण है। अपने से छूटते हुए, खोये हुए भी व्यक्ति के चित्त में आकांक्षा है उसकी, जो सदा शिव है, शिव-शंकर है तथा प्रिय-दर्शन है। ऐसे तत्त्व के यदि दर्शन होते रहें तो सौन्दर्य के लावण्य की एक भूख-प्यास प्राणियों में समा जाती है। यह ऊर्ध्वगामी चेतना-शक्ति व्यक्ति-व्यक्ति में है ही, प्राणियों में है। कहीं मौन है, कहीं मुखरित है, कहीं अपरिष्कृत रूप में है तथा कहीं परिष्कृत-परिमार्जित रूप में है। इसलिए अध्यापन का कार्य मानव-जाति के लिए आकर्षक है। इस ऊर्ध्वगामी अभीप्सा को दैनिक जीवन के साथ कैसे जोड़ें, कैसे व्यवहृत करें और मानवीय सम्बन्धों में अभीप्सा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ति करने के लिए मार्ग, माध्यम कैसे खोजे जायें ? यह सवाल है। आप की शिक्षा का दर्शन है, शिक्षा का मनोविज्ञान, जिसको आप शिक्षण-शास्त्र कहेंगे।

दूसरा भी एक पक्ष है। आज संसार के सभी देशों में पिछले १००-२०० वर्षों में एक नयी भूख जाग पड़ी है। मैंने अमेरिका, यूगोस्लाविया एवं हवाई-द्वीप में देखा। इसी प्रकार मिश्र, मलयेशिया और चीन के विश्वविद्यालयों में भी मैंने देखा। मैंने देखा कि मनुष्य उत्तरोत्तर शासन की ओर से अनुशासन की स्वाधीनता की ओर बढ़ता जा रहा है। यह स्वाधीनता की जो भूख और प्यास है, वह राजनीतिक स्वाधीनता, सांस्कृतिक स्वाधीनता और सामाजिक स्वाधीनता की है। आज स्वाधीनता की समता की भूख जाग उठी है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद मानवीय चेतना में एक ऊर्ध्वगामी आकांक्षा स्वाधीनता की, समता की और स्वतन्त्रता की है। वास्तव में यदि मनुष्य स्वाधीन बनना चाहेगा, तो जिम्मेदारी आ जाती है। आत्मानुशासित होने के लिए शासन एवं प्रशासन की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जब तक मानव अनुशासित नहीं बनता, तब तक उसके अनुशासन के सूत्र, अनुशासन के आधार और अनुशासन को संचालित करने वाली शक्ति उसके भीतर से नहीं जगती है। संस्कृति में से नहीं जगती है, शिक्षा में से नहीं जगती है तथा शिक्षण में से नहीं जगती है। चाहे जितनी लोकतन्त्र की बात करें, समानता की बात करें, स्वाधीनता और भ्रातृत्व की बात करें तथा साम्यवाद-समाजवाद की बात करें, मनुष्य वहाँ तक नहीं पहुँच पायेगा, जब तक वह अपने ऊपर अनुशासन रखना एवं अपनी वासनाओं पर अंकुश रखना नहीं सीखेगा। इस प्रकार की शक्ति यदि भीतर नहीं जगायेगा तो आत्मानुशासन की शक्ति कानून से नहीं जगायी जा सकती, वह बन्दूक की गोली की भय से नहीं जगायी जा सकती। आत्मानुशासन जगाने का एकमात्र तरीका है शिक्षण।

यह जो मानव-जाति की स्वाधीन बनने की एवं समता की इच्छा एवं भावनायें हैं, इनकी दीवारें बर्दाश्त नहीं हो रही हैं; धर्मों एवं सम्प्रदायों की सीमायें नहों बर्दाश्त हो रही हैं; राष्ट्रों की दीवारें नहीं बर्दाश्त हो रही हैं। भेद एवं अभेद में जीना; 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या चित्त में शान्ति न हो तो क्या अभेद में जीना सम्भव है ? अभेद में जीने के लिये मनुष्य सुसंस्कृत होना चाहिए, आत्मानुशासित होना चाहिए। इसलिए अध्यापक की शिक्षा का महत्त्व सबने माना है। एक सद्भावना-दृष्टि होती है। जनतन्त्रवादी देशों से लेकर मार्क्स-वादी और साम्यवादी देशों तक के मनुष्य के अन्तस्तल को बदला नहीं जा सकता। कानून या बन्दूक को माध्यम बनाना पड़ेगा। इसीलिए मैंने कहा कि जब तक मनुष्य अपने भीतर चलती हुई मनोरम सत्ता को अपने दशेन्द्रियों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यवहार में अवतरित नहीं कर पायेगा, तब तक आत्मसत्ता का आधार, जो मानवीय सम्बन्ध है, उसके खड़े होने का स्थान नहीं मिल पायेगा, समाज में तब तक विद्यालयों की, अध्यापकों की आवश्यकता हर देश को रहेगी।

एक दूसरा पक्ष, जो देश-काल-परिस्थिति-निरपेक्ष तत्त्व है, उसका एक मुद्दा आपके सामने चिन्तन के लिए रखती हूँ। परिस्थिति-सापेक्ष उसका स्वरूप है। इसकी तरफ आप देखें, तो आप पायेंगे कि निरपेक्षता में यह एक और विभिन्नता है। एक पहलू है, एक हिस्सा है कि अज्ञान किसी को प्रिय नहीं है; ज्ञान का आलोक सबको प्रिय है। आप क्षमा करें। लेकिन भारतीय संस्कृति में हमारे यहाँ कहा गया है कि पदार्थ निर्जीव है। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, क्रिया है। ज्ञान आत्मा का स्वभाव होने के कारण और अज्ञान विभाव होने के कारण विभाव के प्रति विरति और स्वभाव के प्रति गति सतत अनुराग है। यह स्वाभाविक है। यह जो ज्ञान एवं ज्ञान के आलोक के प्रति आकर्षण है, वह अपने आत्मा के स्वभाव के प्रति, स्वधर्म के प्रति आकर्षण है। खैर, अध्यापक-समाज कितने निगूढ़ तत्त्वों से स्पन्दित है, वह एक प्रस्तावना के रूप में आपके सामने प्रस्तुत किया।

अब हम देश-काल-परिस्थिति-सापेक्ष पर आते हैं। लोग कहते हैं कि इस पावन-स्वरूपा धरती पर पैर रखकर चलो, भले ही आपका सिर आसमान में हो। आज हम कहाँ खड़े हैं? देश किस मुकाम पर खड़ा है? इस सम्बन्ध में अध्यापक, युवक सबकी जिम्मेदारी है। चले गये वे दिन, चला गया वह जमाना, जब गुरुकुल या विद्याकुल हुआ करते थे, सहजीवन हुआ करता था। साथ ही जीते थे और जीने के क्रम में शिक्षा ग्रहण करते थे। शिक्षण केवल ज्ञान प्राप्त करने का साधन नहीं है। शिक्षण केवल शाब्दिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं है। शिक्षण केवल डिग्रियाँ दिखलाने के लिये नहीं है, बल्कि शिक्षा एक व्यक्तित्व से दूसरे व्यक्तित्व में संक्रान्त होने वाली जीवन-ऊष्मा है। वह प्रेम का सम्बन्ध है। माँ की जाति की हूँ, इसलिए वैसी ही याद आयेगी—जैसे कि माँ की कोई सन्तान हो। वह जमाना चला गया, जब पढ़ाने की, सिखाने की भूख लगती थी।

हमारे एक मुसलमान गुजरात में रहते हैं। वे अत्यन्त गरीब घर के बालक थे। वे बड़े बुद्धिमान् एवं मेधावी थे। उनकी इच्छा संस्कृत सीखने की थी। उनके छोटे से गाँव में एक ब्राह्मण रहा करते थे। उनसे उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की कि महाराज! संस्कृत-विद्या सीखना चाहता हूँ। यह मैं अभी नयी ही बात कह रही हूँ—सौ वर्ष भी पुरानी घटना नहीं है। ब्राह्मणी ने कहा कि यह मुसलमान लड़का है और आपके पास आया है। आप इसको पढ़ायेंगे? वास्तव में वे सचमुच ब्राह्मण थे। उन्होंने कहा कि जो विद्या के प्रेम के लिये आया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, उसकी जाति एवं धर्म को नहीं देखा जाता है। उसे घर में बुलाया और गोदी में बिठाया। ब्राह्मणी से थोड़ा गुड़ मँगाया, उसके मुख में गुड़ डाला और कहा कि कल सुवह से सीखने के लिए आना। लेकिन मैं समझती हूँ कि ३०-३५ वर्षों में सन्दर्भ बदल गये हैं और उन बदले सन्दर्भों को याद करते रहने का समय नहीं है। अब वे सन्दर्भ नहीं हैं, उसका दुःख मानते रहें तो वर्तमान के साथ जूझने की शक्ति नहीं आयेगी।

आज का सन्दर्भ क्या है, इसको हम देखें। इस बदले हुए सन्दर्भ में १८४०-४२ के बाद, यह विद्यालयों का समूह बनता चला जा रहा है। इनमें हमारी अनेक पीढ़ियाँ दिन-प्रतिदिन तैयार होती चली गयीं। उनमें अधिकतर विद्यालयों के मात्र प्रस्तावना हैं। शिक्षण की अनेक व्यवस्थाएँ हुईं। उसके शास्त्र बने। उसकी प्रक्रियाएँ बनी। विद्यालयों के स्वरूप, सिखाने की प्रक्रियाएँ और परीक्षा की पद्धति, यह सब एक ढाँचे में बनता चला गया। जो ढाँचा विगत वर्षों में बड़ा उपयुक्त रहा होगा, आज टूट रहा है। शायद आप सदियों से चले आ रहे ढाँचे में यहाँ के शिक्षण को ढालना चाहें, लेकिन वह ढाँचा भी टूट रहा है। परन्तु वह पूर्णरूपेण टूटा हुआ नहीं है। ऐसे जीर्ण-शीर्ण ढाँचे में काम करना है, उसमें विद्यार्थी को पढ़ना है और अध्यापक को पढ़ाना है। जब तक भारतीय संस्कृति के अनुरूप विद्यालयों के स्वरूप नहीं बनते, पढ़ाई की प्रक्रिया उद्घाटित और विकसित नहीं की जाती, इतिहास को पढ़ाने का स्वरूप नहीं बदलता, तब तक इसी चौकड़ी में सबको जीना है।

मैं आपके जिले के संस्थानों के बारे में नहीं जानती हूँ। मेरे सामने सन्दर्भ है महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब और हिमाचल प्रदेश की परिस्थिति का। अधिकतर इन दो प्रदेशों—पंजाब एवं हिमाचल में पिछले दो वर्षों में मैं गई। इन राज्यों का शिक्षा-संगठन हमारे सामने खड़ा हुआ। वहाँ शिक्षा एक व्यवसाय हो गयी। जैसे दूसरी नौकरियाँ हैं, वैसे ही शिक्षा की नौकरी हो गयी है। ऐसी धारणा एवं विचार हृदय में भर गया है। अब आप कहेंगे कि आपने इतना बड़ा वक्तव्य दे दिया, लेकिन मेरे पास आधार है। भारत के १४ विश्वविद्यालयों में कुछ वर्ष पूर्व मैं विद्यार्थियों एवं अध्यापकों का शिविर चला रही थी—गौहाटी यूनीवर्सिटी से लेकर कानपुर यूनीवर्सिटी तक। बातों के विस्तार में पड़ना नहीं है, लेकिन बम्बई विश्वविद्यालय की एक घटना याद आती है। आपके बीच बैठी हूँ। वहाँ शिविर में कुलपति थे। दो सौ से अधिक रीडर, लेक्चरर और प्रोफेसर थे। एक सज्जन खड़े हो गये और शिविर के दरम्यान कहने लगे कि बहन जी! इस देश में इतना भ्रष्टाचार है। विषय कुछ ऐसा चल रहा था। मैं कह रही थी, विश्वविद्यालयों के मतदान-क्षेत्र इतने भ्रष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों हो रहे हैं? इतनी गलती क्यों है? यह हमको और आपको मिलकर सोचना चाहिए, इतने में वे सज्जन जल्दी से खड़े हो गये और बोले कि दिल्ली से लेकर न्याय-पंचायतों तक सब जगह भ्रष्टाचार है। यह है सन्दर्भ।

इसका दूसरा सन्दर्भ है कि विद्यार्थी एवं शिक्षक के मानसिक सम्बन्ध के साथ-साथ आपसी सम्बन्ध भी बदल गये हैं। पहले विद्या से प्रेम के लिए, पढ़ाई से प्रेम के लिये पढ़ाया जाता था। विद्यार्थी विद्या के प्रेम के कारण—'विद्या एव अर्थो यस्य स विद्यार्थी'—पढ़ने के लिये आते थे। अब यह क्या हो गया? आर्थिक आग्रह बच्चों के लिये भी एक आवश्यकता हो गया है। यदि नहीं पढ़ेंगे तो नौकरी नहीं मिलेगी। यहाँ पढ़ाने के लिये भी एक नौकरी का स्वरूप हो गया है। अब वह पुरानी प्रवृत्ति नहीं है। महाराष्ट्र में यह नहीं पूछते कि आप का धन्धा क्या है? कौन सा व्यवसाय है? कहते हैं, आप कौन सी वृत्ति करते हैं? वृत्ति क्या है? जीविकोपार्जन का साधन क्या है? महाराष्ट्र के गाँवों में यह शब्द प्रचलित है। वहुत जगह व्यवसाय, 'जीविका' शब्द का प्रयोग होता है। यों जो सारे भारतीय संस्कृति में से आये हुये शब्द और धारणायें हैं, अभी हम वहाँ तक नहीं पहुँचे हैं। यह मुझे अनुभव और जानकारी है कि पहले जो व्यवसाय करता था, वह उससे प्रेम करता था। पढ़ाने वाले अपने सुख-दुःख को भूल जाते थे। अपने आपको भूल करके पढ़ाने में एक आनन्द—परमानन्द-हेतु समाधि में लग जाते थे। इस प्रकार आनन्द-परमानन्द देने वाले लोग थे। अब हमारे लिये भी आर्थिक आवश्यकता अनिवार्य हो गई। जैसे दूसरी नौकरियाँ हैं, वैसे ३०-३५ वर्षों से शिक्षक की नौकरी भी बनती चली जा रही है, शिक्षकों के भी संघ बनते चले जा रहे हैं।

मैं आपके जिले में हूँ। राजनेता, प्रशासक, कर्मचारी और व्यवसायी को छोड़कर हमी शिक्षकों ने क्या बिगाड़ा है कि आप हमारे पास चली आयी हैं? नैतिक मूल्यों की बात कहने के लिये आप हमारे पास आयीं कि क्लास में नहीं पढ़ाते हैं; बाहर ट्यूशन करते हैं; जो ट्यूशन न दें, उनको फेल कर देते हैं। कुछ-कुछ बातें ऐसी मेरे सामने कभी चली थीं। ठीक से याद नहीं है, क्योंकि घटना ९-१० वर्ष पहले की है। मैंने उनसे कहा—भाई साहब! आपने ठीक सवाल पूछा, लेकिन राजनेताओं के पास देश होगा, पहाड़ होगा, पत्थर होगा, नदियाँ होंगी, व्यापारियों के पास अनाज-वस्त्र होंगे। आपके पास इस देश की भावी चेतना है, इस देश का आधार है, अनुष्ठान है, जो भावी चेतना का है। भिक्षा माँगने आप के पास आयी हूँ। दूसरों के पास नहीं गयी। आज शिक्षण एक नौकरी एवं व्यवसाय हो गया है। ऐसे सन्दर्भ में मैंने जो देखा है और अनुभव किया है, उसका आप में से अनेकों को एहसास हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता है—विद्यार्थी को भी और अध्यापक को भी। इस सन्दर्भ में क्या करना है और क्या कर सकते हैं? ऐसा लगता है कि मैं दो-तीन बुनियादी और उपयोगी बातें ही आप के समक्ष रख पाऊँगी। इस सन्दर्भ में यही रखना बेहतर होगा।

एक तो आज राष्ट्रीय एकता खतरे में है। यह राष्ट्र एक इकाई के नाते जीता चला आया। सांस्कृतिक एकता के आधार पर हम जीते चले आ रहे हैं—हजारों वर्षों से—आसेतु हिमालय, रामेश्वरम् या त्रिवेन्द्रम् में कौन राज्य करता था? जम्मू कश्मीर में कौन राज्य करता था? यह देखा नहीं जाता। जो यात्री अमरनाथ, केदारनाथ, बदरीनाथ, रामेश्वर-कन्याकुमारी जाते 'आसीत् पुमान्', वे यह नहीं पूछते। सांस्कृतिक एकता एक सिद्धान्त नहीं, एक जीवन है, स्पन्दित होनेवाला जीवन है। जैसे देश के अन्तस्तल में सुनाई देने वाली एक बहुत शानदार चीज थी वह सांस्कृतिक एकता की भावना। उसके साथ लगी राष्ट्रीय एकता की भावना आज खतरे में है। उसको बचाना है विद्यालयों में, शिक्षकों के जीवन में तथा विद्यार्थियों के जीवन में। इस सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता की भावना को जीवित रखने के लिए जितने सजीव उपक्रम हो सकते हैं, पाठ्यक्रम में और पाठ्यक्रम के अतिरिक्त, उनको अपनाया जाय। यह न सुनने को मिले कि इस राष्ट्र के टुकड़े हो गये। राजनीति के हथकंडे और राजनीतिक झगड़े तथा सत्ता की स्पर्धाएँ चलती रहेंगी। जिसको जो करना है, वह उसे देखे। यह तो हमारा विषय हैं, लेकिन इस देश की एकता पर कोई आंच नहीं आ सकती। इसको कोई धक्का नहीं लगा सकेगा। राष्ट्र एक बनकर रहेगा। हम एक बनकर जियेंगे। इसकी प्रेरणा हमारे विद्यालयों की दीवारों से, अध्यापकों के व्यवहार से, उनकी वाणी से मिलती रहे, तो भारत के भाग्योदय में हमने अपनी सेवा अर्पित की; ऐसा हम समझेंगे। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता खतरे में है, यहाँ केवल अखबारों में पढ़कर या गाँवों में बैठकर शायद याद नहीं आयेगा।

गत जनवरी में मैं आसाम गयी थी। आसाम से मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है, गाँव-गाँव में भ्रमण किया है। उस समय आसाम एक था। सात बहनें नहीं बनी हुई थीं। आज पूरा पूर्वी भूखण्ड एक ऐसा क्षिप्रग्राही, विस्फोटक और ज्वालामुखी-जैसा प्रदेश बन गया। अभी-अभी हमने वहाँ के लगभग ५० नौजवानों को गुजरात में बुलाया था। गुजरात में उनका जो स्वागत गाँवों में, शहरों में और घरों में हुआ, उससे वे लड़के और लड़कियाँ इतने प्रभावित हुए कि कहने लगे कि हमें मालूम ही नहीं था कि हम आसाम के लोगों को हिन्दुस्तान के लोग अपना मानते हैं। अब उनसे कोई पूछे कि कहाँ से आये हो? तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते थे कि हिन्दुस्तान से आये हैं। मिजोरम, असम, मेघालय, त्रिपुरा और मणिपुर के वे लड़के हैरान रह गये, जब उन्होंने देखा कि यहाँ के लोगों के दिल में उनके प्रति इतना स्थान है। वे भी इस देश के वासी हैं।

जो लोग सांस्कृतिक आदान-प्रदान का कार्यक्रम शुरू किए हुए हैं, वे अन्य राज्यों के लड़कों को, लड़कियों को तथा युवतियों को अपने प्रान्त में लाकर उनको अपनी संस्कृति से परिचय करवा कर उनको यह अनुभव करवाते हैं कि आप लोग भी भारत के नागरिक हैं। इस प्रकार का कार्यक्रम पिछले ८-१० वर्षों से गुजरात-युवक-समाज की ओर से चल रहा है। अभी मैं पंजाब में घूमी हूं। पटियाला गयी थी और वहाँ से उधर पाकिस्तान की तरफ गयी थी। पता चला कि इस समय राष्ट्रीय एकता कितने खतरे में है।

एक ऐसी ही दूसरी एकता खतरे में है, वह है सांस्कृतिक एकता। सामाजिक एकता को बचाने वाले बहुत ही कम हैं, क्योंकि लोग इस समय सत्ता-संघर्ष और राजनैतिक मतभेदों से मुक्त नहीं रह सकते। ऐसे लोगों की नितांत आवश्यकता है, जो समझें कि सामाजिक एकता कैसे टूट रही है, जिसको महात्मा गाँधी ने जी-जान देकर बनाये रखने की कोशिश की। उन्होंने तपस्या की और घूम-घूम करके, कोशिश करके अस्पृश्यता-निवारण किया। सामाजिक एकता की जो भूख है, पिछले ३०-३५ वर्षों में इसको उकसा करके विकृत कर दिया गया है। कितना दुर्भाग्य है? देखिये, आज आग लगी है समाज में तथा देश में। आग किसने लगायी और कितनी किसने लगायी? किसका दोष है? किसकी जिम्मेदारी है? इसकी चर्चा संगत नहीं है। जब आग लगती है तो पहले पानी डाल करके उसको बुझाना चाहिए। यदि चर्चा करनी है, तो हम विश्लेषण पीछे करते रहेंगे। पहले आग बुझानी चाहिए, न कि विश्लेषण करना चाहिए कि किसका कितना दोष है और कितनी जिम्मेदारी है? उसकी मात्रा क्या है?

यह जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता है, वह एक निर्मल वस्तु है और उसकी रक्षा के लिए हमें सोचना नहीं, बल्कि लग जाना है। सवर्णों के क्षेत्र में हरिजनों का घर जलाया जा रहा है। सम्भल में हिन्दुओं को मारा जा रहा है, हरिजनों को मारा जा रहा है, चार-छः महीने विषाक्त वातावरण रहा, कोई अछूता नहीं बचा। शिक्षक, डाक्टर, इन्जीनियर, कृषक, हर वर्ग के लोग मारे गये। इस प्रकार हम, लोगों के बीच खड़े थे और सुलगती हुई आग में घूम रहे थे—गाँवों में, शहरों में, सड़कों पर, गलियों में, रात में, दिन में। कहते थे कि आग की लपटों में कहाँ जा रहे हो? आप बिहार में देखते होंगे, उत्तर प्रदेश में देखते होंगे। कौन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा ऐसा राज्य है, जहाँ समाज न टूट रहा हो ? कौन सम्भालेगा ? बच्चों से कौन कहेगा कि तुम मनुष्य हो, भारतीय हो, चाहे जिस कुटुम्ब में जन्म लिए हो, भूमिहार के घर, कायस्थ के घर, कान्यकुब्ज के घर, हरिजन या गिरिजन के घर, आदिवासी या वनवासी के घर। यह देश जाति-प्रधान नहीं बल्कि कर्म-प्रधान है। हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को सार्थक बनाना है, चरितार्थ करना है। भावी नागरिकों के बीच जाति-भेद के विपरीत, जो भीतर मानवता की भूमिका का अनुष्ठान करेगा, वही जातिपरक व्यवस्थाओं को मिटायेगा।

हमारे सामने दो संस्थायें खड़ी होती हैं—पहला परिवार, दूसरा विद्यालय। यदि परिवार में माता-पिता अपने बच्चों से कहें कि भले ही किसी जाति में जन्म हुआ हो, किसी भी धर्म में जन्म हुआ हो, हम सब मनुष्य हैं। मनुष्य के नाते किसके शरीर पर क्या लेपन चढ़ा हुआ है, यह न देखना। जब हम मनुष्य की चमड़ी नहीं देखेंगे, तो मनुष्यता के अधिष्ठान पर बालक की चेतना आधारित हो जाती है और यह व्यवस्था कर्म-प्रधान हो जायेगी। मानवता एवं कर्म पर आधारित व्यवस्था में यदि वैज्ञानिकता होगी, तो वह टिकेगी। लेकिन उसकी वैज्ञानिकता की परीक्षा करने के लिए, जो उसका अवैज्ञानिक मार्ग है, उसको तो हटाना ही पड़ेगा।

आज सामाजिक एकता गाँवों में टूटी है, तो आप कहेंगे कि क्या शहरों में नहीं टूटी है। लोग शहरों में कैसे जी लेते हैं ? इसको विचार करने का समय नहीं है। उसको प्रस्तुत करने का आज औचित्य भी नहीं है। उसको समझने में ८-१० वर्ष लगेंगे और तब पता चलेगा कि जड़ें कितनी उखड़ चुकी हैं, कहाँ से कहाँ पहुँच गयी हैं। लेकिन यह हमारा क्षेत्र नहीं है। एक संश्लिष्ट समाज की रचना हमारा क्षेत्र है। हम क्यों नहीं भारत के भावी नागरिकों में ऐसी चेतना उद्दीप्त रखें—आस्तिक हों या नास्तिक हों, नागरिक होने के नाते, समाज का एक घटक होने के नाते, प्रत्येक को समाज में, भारतीय समाज में सबको समान रूप से जीने का अधिकार है। वेदान्तों के द्वारा जो पवित्र, निर्मल, और स्पष्ट समाज की स्थापना थी, उसमें से जब आज असहिष्णुता प्रकट होती है, तो मैं कहाँ सिर छिपाऊँ ? कुछ समझ में नहीं आता। विद्यालय घर बन सकते हैं। इसके लिए अध्यापकों को तय करना पड़ेगा। मैं कोई वैसी बात नहीं कहती कि वे वेतन न लें।

शिक्षित स्त्रियों का नहीं, साक्षर स्त्रियों का अनुपात वहुत कम है। आपने बहुत से इलाकों में देखा होगा कि स्त्रियों एवं पुरुषों के बीच निरक्षरता व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षरता कितनी है। उत्तर प्रदेश और बिहार इस दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। यहाँ पर स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्राप्त है। उद्धारकर्ता के रूप में महात्मा गांधी आये, जिन्होने स्त्रियों को दासता से मुक्त किया, भोग का विषय बनने से मुक्त किया और उनको एक सम्भ्रान्त स्थान दिया। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में ये संस्कार बन सकते हैं। फिर हमें कोई शिकायत नहीं होगी, क्योंकि इस संस्थान में हमें इस प्रकार की शिकायतें मिलती ही नहीं, ऐसी ही मेरी श्रद्धा है। लेकिन अन्य विद्यालयो में, विश्वविद्यालयो में कन्याओं का पढ़ना इन युवको के बीच, जो भारत के भावी नागरिक हैं, देखने को भी नहीं मिलता। हम एक राष्ट्रीय संकट की स्थिति से गुजर रहे हैं।

किन्तु यहाँ के अध्यापक लोग इस स्तर के हैं। थोड़ा सा समय भी मेरे पास है। अतः आप लोगों की अनुमति से एक विषय और उठाने जा रही हूँ। वह विषय यह है कि यहाँ देश में आने वाले दस-एक वर्षों में यह जो आर्थिक विषमता है, इसका निराकरण होगा या सिर्फ भगवान् मालिक हैं। रक्त-रंजित विद्रोहों से इस देश को यदि बचा पायेंगे, तो अध्यापक ही । मनुष्य के पुरुषार्थ के वश में इस देश को बचाना नहीं रह जायेगा, ऐसे आसार नजर आ रहे हैं। बहुत सहन किया है। आज भी गरीबी की रेखा के नीचे ४० या ४५ फीसदी जो लोग रहते हैं, उनका भी जीवन मैंने देखा है। गाय और भैंस के साथ जहाँ उनको देखा जाता है, वह स्थान रहने का नहीं। भूदान आन्दोलन के जमाने में भी ऐसे गाँव से हम गुजरे हैं, जहाँ लोग सबेरे खायें तो शाम को नहीं, शाम को खायें तो सबेरे नहीं, कोई तो कन्दमूल ही खाये। ऐसे गाँवों की गरीबी हमने देखी है, जिसकी कल्पना आप सिनेमा को देखकर, उपन्यासों और ग्रंथों को पढ़ कर नहीं कर पायेंगे। गाँवो में गरःबी नहीं, भुखमरी है, जिसके विराट् रूप को देखकर ही सन्त विनोबा जी को करुणा हुई।

हमें विद्यालयो में, विश्वविद्यालयों में, अपने बच्चों में, छात्रों में एक आदर्श पैदा करना है! जैसे पहले कभी मेधा रही होगी और शिक्षकों ने कहा होगा कि देश को आजाद बनाना है, वैसे ही आज इसके लिए जागरूकता होनी चाहिए। चाहे जो कुर्बानी देनी पड़े, चाहे जो त्याग करना पड़े, वही इष्ट है, वही प्राप्तव्य है, वही समाज की आकांक्षा है। राष्ट्र के कोने-कोने में गरीबी है। यदि उसको दूर नहीं करेंगे, आर्थिक विषमता को बढ़ाते रहेंगे और मिटायेंगे नहीं तो स्वराज्य प्राप्त होने के इतने दिनों बाद इस गरीबी को मिटाने की आकांक्षा लोगो में कैसे पैदा करेंगे? कौन पैदा करेगा? यदि हमारे जीवन में, हमारे व्यवहार में भारतीय समाज, सामाजिक एकता तथा सांस्कृतिक एकता उतरे, तो हमारी वाणी में, हमारे पारिवारिक जीवन में सांस्कृतिक एकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की भावना परिलक्षित हो। यह स्पष्ट हो सबको कि, नहीं कहेंगे किसी को कि यह हरिजन है, नहीं कहेंगे कि यह चमार का बेटा है तथा नहीं कहेंगे किसी को कि यह ब्राह्मण नहीं, वैश्य है। यह बातचीत की शैली बने, क्योंकि हम बात करते चले जाते हैं। बच्चों के सुखद भविष्य की जो कामना है, उसको भूल जाते हैं। यह एक दूसरी बात है। इसकी आवश्यकता सामाजिक एकता में सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने में प्रतिदिन व्यवहार में पड़ती है।

तीसरी जो चीज है, वह यह है कि मैं उत्तर प्रदेश में रहती हूँ। यह सुयोग है कि उत्तर प्रदेश कह रही हूँ। यह कृष्ण की भूमि है। बच्चों में यहाँ जो ऊर्ध्वगामी चेतना छिपी हुई है, उसको अपील करते हुए, उसको सम्बोधित करते हुए उसकी मदद से कह रही हूँ। यह स्त्री केवल भोग की वस्तु नहीं है, वह गृहिणी है, सह-धर्मिणी है, सहगामिनी है, सहचारिणी है, सहनागरिक है तथा समाज की घटक है। स्त्री-पुरुष की समता, उसका गौरव और उसकी गरिमा लोकतन्त्र में नहीं आयेगी? इस देश में मनुष्य के नाते, अध्यात्म की दुहाई देने वाले लोगों के नाते स्त्री-पुरुष की समता, स्त्री की प्रतिष्ठा, स्त्री की इज्जत नहीं होगी, तो मैं नहीं समझती कि किस प्रकार लोकतन्त्र या अध्यात्म इस देश में जीवित रहेगा। पिछले कुछ वर्षों से इस विषय पर सोचना बहुत आवश्यक हो गया है। विद्यालयों में लड़कों में, लड़कियों में ऐसे संस्कार उत्पन्न किये जाने चाहिए कि स्त्री को भोग-परायण न बनावें। यदि यही भावना छात्रों में पैदा की जाय, तो एक सहज समाज का निर्माण होगा। स्त्री के प्रति सहधर्मिणी, सहगामिनी, सहचारिणी के रूप में पुरुष के चित्त में भावनाएँ होनी चाहिए। इस प्रकार की बातें महाराष्ट्र और केरल में देखने को मिलती हैं, जहाँ स्त्रियों के शिक्षण का स्तर सबसे उच्च है। स्त्री-स्वाधीनता असम में देखने को मिलती है। लेकिन उत्तर प्रदेश और बिहार में गरीबी है। अमीर बनने का स्वप्न मैं न देखूँ। यह स्वप्न मैं अवश्य देखूँ कि मैं अपने परिवार के लिए धनोपार्जन करूँगी, मैं कमाऊँगी। मेरे परिवार की इज्जत हो, लेकिन अमीरी की बात हमें इस देश की परिस्थिति के सन्दर्भ में ही सोचनी चाहिए। यदि शिक्षक बच्चों के जीवन में सन्तोष-नाम का धन दे दें तो यह एक बहुत अच्छी बात होगी। यह बहुत आवश्यक बात है।

विनोबा जी का आहार बहुत कम है और उनकी काया राष्ट्र के लिए, हम सबके लिए बड़ी कीमती है। विनोबा जी को तो आप लोग जानते ही होंगे-नाम से भी और वैसे भी। उनको समझाने के लिए उनके पास डाक्टरों का एक दल गया। वह बैठे हुए थे। उन्होंने कहा कि आप लोग जानने आये हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि मैं आहार में क्या लेता हूं, कितना लेता हूं और कब लेता हूं ? तो सुनिये, आपको बताता हूं कि प्रतिदिन मैं श्रीमद्भगवद्गीता के १८ अध्याय खाता हूं। अब पंडित जवाहरलाल नेहरू के द्वारा भेजे गये दल के साथ मजाक तो हो नहीं सकता। विनोबा जी गजब के विनोदी आदमी ठहरे और बोले—लिखिये, प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता के १८ अध्याय सेवन करता हूं। इससे मुझे न्यूट्रीशन मिलता है, मुझे पोषण मिलता है। ग्रंथों में भारतीय संस्कृति थोड़ी जीती-जागती है। जब वे अपने में एक दूसरे का मुख ताकने लगे, तब फिर उन्होंने कहा—मैं रोज जाग्रत् अवस्था में और मेरा ख्याल है, निद्रावस्था में भी, सन्तोष खाता हूं तथा मैं आकाश सेवन करता हूं। कुछ घण्टों का हिसाब दिया था, जो ठीक से मुझे याद नहीं कि कितने घण्टे मैं आकाश का सेवन करता हूं। मैं कितने घण्टे धूप में बैठकर 'मल्टी विटामिन ट्रीटमेण्ट' लेता हूं, जो धूप सूर्य की रश्मियों में समाहित है।

आप समाज के एक अविभाज्य अंग हैं। आपको तकलीफें होंगी, जैसे अन्य सबको होंगी। हमारे पास प्रथम श्रेणी का टिकट नहीं है। वातानुकूलित का टिकट होगा, तब भी मैं अपने डिब्बे में चढ़ूंगी। किन्हीं पर भरोसा नहीं। चढ़ गई, तो एक बार दो व्यक्ति शराब पिये बैठे थे। कूपे मेरे नाम से रिजर्व था। मैं चढ़ने लगी। मैंने कहा कि भाई साहब! जरा उठिये, बाहर देखिये, वहाँ मेरा नाम लिखा है। मेरे साथ एक और बहन थीं। मैं कन्डक्टर के पास गई। उसके हाथ में सौ रुपये का नोट पहले ही पहुँचा देखा। वह मेरी बात क्यों सुने ? मुझे कहने लगा कि आप, वह दूसरा डिब्बा है, उसमें जाइये। मैंने कहा कि चार आदमियों का डिब्बा है। दो पहले से ही बैठे हैं, इन दो भाइयों को वहाँ बैठाइये। कूपे मेरा रिजर्व है। मैंने पैसे दिये हैं। उन्होने कहा कि बहन जी ! आप दूसरे डिब्बे में जाकर बैठिये, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी। इधर-उधर दौड़ती रही, घूमती रही। वातानुकूलित कूपे की बात करती हूं, तो प्रथम और द्वितीय श्रेणी की बात ही क्या है ? घर नहीं छोड़ना है। सुविधा व सुरक्षा-परायण, उपभोग-परायण मनोवृत्ति का त्याग करना है, क्योंकि यदि हम सुविधा तथा सुरक्षा, उपभोग-परायण बनेंगे, तो भीरु बनेंगे, किसी के दबाने से दब जायेंगे, किसी के डराने से डर जायेंगे, कोई पैसे की लालच दिखा देगा तो उसके पीछे चलते बनेंगे। मनुष्य का गौरव नहीं रह जायेगा। कहाँ रहेगा अध्यात्म ? और कहाँ रहेगा लोकतन्त्र ? अतः लोकतन्त्र के लिए स्वाधीन, संयमी और आत्मानुशासित नागरिक बनाने की, जो एक बहुत बड़ी प्रतीक्षा युग कर रहा है, उसे हम अपने मर्यादित क्षेत्र में इस कार्य को कर सकते हैं।

अन्तिम बात कह कर समाप्त करूं कि जिसको विद्यालय में शिक्षण का कार्य करना है अथवा विद्यालयों में विद्यादान करना है, उसे सत्ता की और पक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की राजनीति से सदैव मुक्त रहना होगा। मैं आपके पास इसलिए आयी हूँ कि मेरी जानकारी में विद्यालय पवित्र स्थान हैं। बड़ी सुन्दर बात आपने कही क विद्या का केन्द्र बनाते जा रहे हैं। बड़े प्यारे लगे शब्द। ये शब्द केवल शब्द हो नहीं हैं, आप का वातावरण इसका कुछ जवाब भी देता है। इसके कुछ सबूत भी यहाँ हैं। मैं प्रभु से प्रार्थना करूँगी कि ऐसा वातावरण बना रहे। यह विद्या का क्षेत्र बना रहे, जहाँ हम-जैसे लोग आकर स्नान कर सकें। सत्ता की राजनीति से और पक्ष की राजनीति से शिक्षकों का जीवन और विद्यालयों का वातावरण जितना मुक्त रह सकता है, उतना ही देश का अभ्युदय होगा। व्यक्तिगत मत होंगे, व्यक्तिगत राय होगी और मतदान करेंगे। यह तो सब होगा, लेकिन शिक्षक कभी किसी का प्रचारक नहीं बन सकता है। वह पूँजीपति का नहीं होता या सत्ताधारी पक्ष का भी नहीं होता है। वह तो न्यायाधीश के समान निस्पृह, निष्पक्ष होता है। जीवन-मूल्यों को संचार करने की जिम्मेदारी उठाने वाला यह जो शिक्षक का एक पद है, इसपर अपना आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी स्थिर रहने का, आरूढ़ रहने का भाव आपमें जागृत हो, ऐसी प्रेरणा, ऐसी सद्बुद्धि, ऐसी शक्ति प्रभु सबको दे।

मैंने कहा कि भारत का भाग्योदय दूर नहीं है, क्योंकि हमारी की हुई भूलें अब हमारे ध्यान में आने लगी हैं। जिस चकाचौंध कर देने वाले मार्गपर हम चल पड़े थे, उससे होनेवाले अनिष्ट का ख्याल सबको—सत्ताधीशों से लेकर सामान्य नागरिक तक—आने लगा है। विद्वानों एव पण्डितों से लेकर निरक्षर व्यक्ति तक और गाँव में बैठने वाली एक निरक्षर बहन एवं स्त्री तक व्याप्त है। जब अपनी भूलों का ख्याल आता है, तब इसका भान ज्ञान का कारण होता है। अपनी की हुई भूलों का, जिसको ध्यान आता है, वह मानों ठीक रास्ते पर निकल पड़ा है। ३०-३५ वर्ष ६८ करोड़ जनसंख्या के देश में कौन सी बड़ी बात ? यह जानकर कि इतना मनुष्य-बल हमारे पास है, इतना पशु बल हमारे साथ है, यदि इनका योग्य विनियोग हम करें, तो हम सब सुधार सकते हैं। अपनी आध्यात्मिक विरासत में से उसके जीवन-मूल्य, जो आज के विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हों, उन्हीं को लीजिए, क्योंकि मेरी श्रद्धा ही नहीं, कुछ अनुभव भी है कि आधुनिक वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसने पर हमारा जो अध्यात्म है, सनातन जीवन का एक-एक अंश है, वही सही उतरने वाला है और सही उतरता जा रहा है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ :

प्रार्थना : प्रभुसत्ता के साथ निजसत्ता की सम्बन्ध-भावना

जिस प्रकार परमात्मा की सत्ता का एक मंगलकारी उद्घोष है, उसीप्रकार उस सत्ता से हम अपने सम्बन्ध किस प्रकार बनायेंगे, उसके उपाय भी बतलाये गये हैं। प्रार्थना एक पथ है, जिसमें प्रभुसत्ता के साथ हम अपने सम्बन्ध का अनुभव कर सकते हैं और उस सम्बन्ध का आनन्द लूट सकते हैं। परमात्मा है, इतना जानने भर से पुरुषार्थता जीवन में नहीं। ईश्वर ऐसे हैं, क्या हैं? निर्गुण हैं, निराकार हैं, साकार हैं, घट-घटव्यापी हैं इत्यादि जानने भर से साफल्य नहीं है। जो जानेगा, वह यह भी जानेगा कि जीवन को इसको जीना पड़ता है। हमारे पूर्वजों ने कहा कि यह जो विश्व है, विराट् विश्व है, उसमें ब्रह्माण्ड क्या, अनेकानेक ब्रह्माण्ड हैं, तो इनको जानने से केवल काम नहीं चलता है, समझना पड़ता है। ये शब्द केवल रूपक नहीं हैं, मस्तिष्क के पोषक हैं। पर वह जो सर्वत्र, सर्वदा, सर्वव्यापी, सर्वरूप प्रभुसत्ता, है, अब उससे परे क्या है? यह अशान्तिनाद है, उसे कैसे सम्भालें? सुबह से शाम तक उसके साथ कैसे सम्बन्धित रहें? प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने की उत्सुकता ही निर्गुण-निराकार से सगुण-साकार है। उसे नियति में लावें। इसके लिए अनन्त शास्त्र हैं। शरीर हमेशा से नश्वर होते हुये भी अमृत तत्त्व की, जिसको अमरता कहते हैं, अभीप्सा रखता है, 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की। सत्य क्या है? हमें अनुभव नहीं होता और इसकी हर किसी को इच्छा होती है। यह इच्छा संसार के किसी भी जीवन में, किसी भी देश में मौजूद रहती है। सन्तों ने रहने का शास्त्र बनाया, उसका .वकास किया कि नाद में से कैसे विश्वनिर्माण हुआ है। 'नादात् अपरा शक्तिः' अर्थात् जो यह अपरा शक्ति है, यह जो नश्वर विश्व है, इसमें से हम उस प्रभुसत्ता से अपना सम्बन्ध बनायें और सत्य का आचरण कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करें। अतः हमने प्रतिमा बनायी और पूजा करना शुरू किया तथा प्रार्थना का जन्म हुआ।

जीवन और इसका रहस्य तथा यह जो पूजा की परम्परा है, इसकी पाबन्दी है और यह जो मरने वाला शरीर है, इसीमें आत्मा कैद है, तो क्या हम सौ साल जीने के बाद उससे प्रेम दिखायेंगे। केवल उसका साथी बनना 'सर्वद्रष्टा महेश्वरः' द्रष्टा न होने पर भी महेश्वर बनने की कला है। प्रार्थना का रहस्य तो जब तक मनुष्य को अपनी नश्वरता का भान नहीं होता, तब तक प्रकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होता, तब तक प्रार्थना का जन्म भी नहीं होता। सद्यः मनुष्य यहाँ स्वार्थ देखता है, उसी का आचरण करता है और मृत्यु का पुनरावर्तन देखते-देखते, सुख की छाया में पलते-पलते और विश्व का विषाद देखते-देखते थक जाता है तो उसे लगता है कि विश्व से अलग भी कोई आनन्द है, इस मानव-अस्मिता से अलग चीज का भान है। यहाँ भरना है, इस आवागमन के बीच देह में भरने लायक कोई अमृत तत्त्व है तो उसे पता, चला कि प्यार का तत्त्व इस देह-पात्र में भरा जा सकता है। निर्दोष, निर्द्वन्द्व और निर्मल प्यार तो ज्ञान की सफलता है।

यह जो प्यार है, उसको भक्ति कहा है। इस हृद्देश में यह जब छला-छल भरा जाता है, छलकने लगता है, तब कहीं आनन्द आता है। इसलिए जीवन की उज्ज्वल गाथाओं का सम्मान रखें। उस प्रभुसत्ता के प्रति अपने रूप के बदले प्रेम जानने की एक श्रुति है। जीवन की सदाचाररूपी आभा में भरे हुए शब्दों को लेकर आप प्रार्थना करते हैं। 'स्थितप्रज्ञ' की भाषा पूछते हैं—'स्थित-प्रज्ञस्य का भाषा'। अर्जुन के साथ-साथ हमारे हृदय में प्रश्न उठना चाहिये। ऐसी स्थितप्रज्ञता कहाँ है? इस दुनियाँ में चलें, सत्संग करें, देखें, तो समाज में जो नवीनता का आयाम है, उसकी तरफ आकर्षित करने वाली, प्रभु के प्रति प्रेम जगाने वाली यह प्रार्थना एक उपक्रम है। सम्बन्धों में जीना चाहिए, समाज की जो संरचनाएँ हैं, उनको कायम रखने में मदद करने के लिये मनुष्य अपना लहू-पसीना एक कर देता है। लेकिन जिसने यह संसार बनाया और जो वसुन्धरा के रूप में, आकाश के, वृक्षों के, जलाशयों के, सागर-सरिताओं के रूप में सज-धज कर खड़ा है, जो अपनी एकता को अनेकता के शृङ्गार में सजाकर हमारे सामने खड़ा है, हम उसको देखें तो सही। हम उसे पर्वतों की स्थिरता में, सागर की गम्भीरता में 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' देखें। उसे हम वसुन्धरा के रूप में देखें, परन्तु अनेक जागतिक रूपों में देखें। हमारे पास समय नहीं है उसे देखने के लिए। इस देश के परिवार में इतनी दीनता और दरिद्रता आ गई है और मनुष्य स्वकेन्द्रित-सा हो गया है कि देखने की उसे फुर्सत नहीं। मनुष्य अपनी बनायी हुई समाजरचना में फँसा हुआ है। देखता है ऐश्वर्य को। जो प्रभु का बनाया संसार है, उसे देखने का उसके पास समय नहीं है। निर्मल रात्रि में, आकाश के नक्षत्र-मण्डल, तारामण्डल जो परिक्रमा कर रहे हैं, यह सब प्रभु के दर्शन हैं। हम गये थे गंगोत्री। महीना-डेढ़ महीना रह गये। जब हम लोग रात्रि में घूमने निकलते थे, तो आकाशदर्शन होता था। रात्रि का दर्शन करें, सूर्य-चन्द्रमा का दर्शन करें, आँखों में भर-भर कर देखें तो पता चलेगा कि मनुष्य और मनुष्य की बनायी गयी दुनियाँ बड़ी क्षुद्र है। इसके सुख-दु.ख भी कुछ नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। सम्पूर्ण विश्व के साथ, प्रकृति के रहस्यों के साथ हम जुड़े हुए हैं। उस रहस्यमयी गति के साथ जुड़ा हुआ जो अपना यह शरीर है, उसको देखते हैं, तो सभी मान-अपमान, लाभ-हानि, यश-अपयश, बहुत छोटे लगने लगते हैं। विश्व के साथ कैसे जियें, इसलिये प्रार्थना करें। अपने जीवन में सुबह और शाम उस चराचर शक्ति की प्रार्थना करें, कि जब हम ठोकर खायें, जहाँ हिम्मत हार जायें, तो वह प्रभु इस हाड़मांस की देह में अपरम्पार शक्ति भर दे। दुनियाँ में कोई हमें समझेगा नहीं। हम सत्य-निष्ठा से चलें।

प्रभु के पास सम्बन्धों में जीना आप सीख लें, तो ऐसे प्रेम-सम्बन्ध में जीने की इच्छा प्रबल होगी और प्रभु आपके सम्पर्क में किसी न किसी रूप में किसी सन्त के पास ले जाकर खड़ा कर देंगे, जिसमें आप जी पायें। पुरुषार्थ मनुष्य करता है, तो पुरुषार्थ एक पन्थ है और दूसरा पन्थ है भक्ति का, शरणागति का। यह भक्ति और शरणागति प्रभु के प्रति भी हो सकती है। जो सनातन सत्य है, लोक-काल-निरपेक्ष है, उसके प्रति शरणागत होना, अपने पुरुषार्थ की मर्यादा को मानना है। अपनी मर्यादाओं को पहचानना ही शरणागति का आशय है। शरणागति के लिए गांधी जी के पास एक कला है। शाम को प्रार्थना में संसार के कितने ही काम क्यों न हों, अवश्य सम्मिलित होते थे। प्रार्थना के समय बापू ध्यानमग्न होकर, अपने देहभाव को छोड़कर, उस चराचर शक्ति के साथ सम्पूर्ण सत्य की सीढ़ी बनाकर, भावना पर आरूढ़ होकर भावलोक में पहुँच जाते थे और उस शक्ति में से शक्ति लेकर वापस आते थे, इसलिए वे अभय जीवन जी पाते थे।

मनुष्य-जीवन में एक तरफ वृत्ति को सूक्ष्मातिसूक्ष्म बनाते हुए विचारों को सबलातिसबल बनाकर पुरुषार्थ की पराकाष्ठा प्राप्त करने का अवसर है। दूसरी तरफ जो प्रेम है, प्रेम की जो शक्ति है, उसके सहारे समर्पित होने का भाव मनुष्य को मिल सकता है। यदि वृत्ति में ज्ञान हो और ध्येय में प्रेम लबालब भरा हो, तो ऐसा एक रसमय जीवन है। एकता का भाव जब प्यार के रूप में प्रकट होने लगता है, तो जीवन मधुरातिमधुर बन जाता है।

भारत भूल गया है कि परमात्मा की सत्ता है और वह सर्वत्र, सर्वदा, सर्वरूप से विराजमान है। ईश को हम भूल गये हैं और दूसरी तरफ इस अविभाज्य अखण्ड प्रभुसत्ता का हमें ज्ञान भी नहीं है। उनके पास तो जीवन के टुकड़ों का भी ख्याल है, यह व्यक्तिगत जीवन है, यह सामाजिक जीवन है, यह राजनैतिक जीवन है, यह आर्थिक जीवन है। हमने जीवन को टुकड़ों में, खण्डों में देखा है और दर्शनशास्त्रों के दायरे से जोड़-जोड़कर एक गुदरी बनायी है। यहाँ तो धैर्य ही जीवन-दर्शन है। जीवन एक अविभाज्य अखण्ड सत्ता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्व जीवों का एक संगम है। विश्व क्या है? यह एक गाँव है। यहाँ शांति की खोज करनी है। सहयोग की, सत्य की खोज करनी है। यहाँ संघर्ष के द्वारा आकांक्षा को सिद्ध करके अपने जीने का हक नहीं साबित करना है। यह दो संस्कृतियों का मेल है और इस लोक-दर्शन में कितना फर्क है, देखिये। लेकिन हमने इसको स्वीकार कर लिया, इसलिये भारतवर्ष में आज जीवन को खण्डित करके देखा जाता है। मन्दिर में बैठते हैं—प्रभु आप सर्वव्यापी हैं, हम आपके शरणागत हैं, दीन-हीन हैं, आप हमें सम्भाल लीजिये। घर गये—बहुत प्यार की बातें कीं, सार्थकता की बातें कीं, परिवार को एक रखने के लिए, तो शरणागत तत्त्व से घर में प्यार का लक्ष्य बना जीवन का और घर से बाहर के समाज में स्पर्धा के बिना कुछ हो नहीं सकता, ऐसा क्यों? हम समाज के एक घटक हैं, अंग हैं। आगे आएँ, आगे बढ़ें, अपने आप को संयमित करें। प्रतियोगिता के लिए झूठ बोलना पड़े, किसी का गला दबोचना पड़े, किसी को पीछें ढकेलना पड़े, शोषण करना पड़े, यह ठीक नहीं। कुछ भी हो, अपने लिए ज्यादा से ज्यादा संग्रह कर सकें, यह अनुचित है। यहाँ व्यक्ति को लेकर न चलें। यह एक तड़पती हुई स्थिति का द्योतक है। भक्ति चली गई, प्यार चला गया। त्याग, शरणागति, घट-घट-वासी परमात्मा चला गया। यहाँ तो आयी स्पर्धा और उसके लिए जो कुछ करना पड़े, क्रूर से क्रूरतम हो भले ही शोषण करना पड़े, उससे जो संग्रह हो, यह वृत्ति न हो। यदि सोचें कि दूसरे के संग्रह-भाव में से शोषण होता है, मेरे संग्रह में से नहीं। इस तरह संग्रह करने वाला सब खर्च कर देता हैं संघर्ष के लिए, राजनीतिक मंच पर। यह प्रभु का मार्ग नहीं। प्रेमका मार्ग नहीं। प्रार्थना का पथ नहीं।

आज भारतवर्ष 'खण्डों का देश' बन गया है, क्योंकि हमने परस्पर एकता का जीवन स्वीकार किया लेकिन सुबह से लेकर रात तक गली में,, कूचे में, एक प्रकार के विघटन का आचरण करते-करते हम थक जाते हैं। यह पाखण्ड है; पाखण्ड जीने देता है? हमको यह जानना चाहिए कि रूस में, अमेरिका में पहले से ही ईश्वर की जरूरत नहीं है, ठुकरा देते हैं। ये वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत ये सब शास्त्र, रामायण, महाभारत की कोई आवश्यकता वहाँ नहीं है। इनका क्या महत्त्व है हमारे जीवन को बनाने में, जगाने में? यह जो भोगवाद की लिप्सा है, उससे क्या त्याग की, बलिदान की, गीता की बातें मेल खाती हैं? मन्दिरों में रामकथा, रामायण और भागवत की कथायें चलती थीं। वह हिन्दुस्तान खो रहा है।

लोग कहते हैं कि इतना सब होने के बावजूद, इतनी विरासत होने के बावजूद भी क्यों इतनी विपत्ति है? इसका कारण है कि पिछले दो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौ वर्षों के प्रभाव में संस्कृति का जीवन में ह्रास और भारत के जन-जीवन के अंग-अंग में विपरीत संस्कारों के प्रभाव चल रहे हैं, फिर भी हम धारणा-विवश हो करके कहते हैं कि भारत की संस्कृति को बचा लें? तो सोचना है कि कैसी व्यवस्था स्वीकार करनी है। अपने देश की जनता को राष्ट्र के नाते क्या हम मानते हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि' तो 'मैं ब्रह्म हूँ' यहाँ पूरी नहीं होती है यह बात। 'तत्त्वमसि' तुम भी वही हो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', तो यदि स्वीकार करना है इसको. तो मनुष्य की यात्रा केवल इस व्याख्या को लेकर नहीं हो सकती है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह किसी को संघर्ष करने के लिए बाध्य नहीं करता और सबको एक साथ ले चलता है और अन्त में एक ईश्वरीय स्वरूप आ जाता है। यह जो संख्या का बल है, इसको खरीद करके भी उतना बल नहीं प्राप्त कर सकते, जितना बल इसमें है। यह मानने की कोशिशें चलती हैं, तो इस प्रकार से भारत को या तो पश्चिम या तो पूरब—दोनों में से एक रास्ते पर चलना है।

अन्धकार, प्रकाश, सत्य और असत्य हैं। इनमें समझौता नहीं हुआ करता। द्वन्द्व लेकर हम क्या करेंगे? वेदान्त हम भूल गये हैं। हम उनके चरणों में गये, लेकिन विज्ञान विषय को उठाने वाला जो अध्यात्म है, उसको हम स्वीकार नहीं करते। मनुष्य की व्याख्या, विश्व की व्याख्या, मनुष्य और विश्व का जो सम्बन्ध है, उसकी व्याख्या, मनुष्य और सहयोजन की व्याख्या हमारे अध्यात्म से नहीं लेंगे तो आज के दिशाहीन, लक्ष्यहीन जीवन का कोई अन्त नहीं पायेगा।

मेरे मित्रों! प्रार्थना के ध्येय से घर से चलें तो भक्ति-भावना का सर्वत्र प्रभाव होगा। कोई ज्ञानशलाका से अंजन लगाकर अद्वैत की दृष्टि को खोल दे, तो दिव्य-दृष्टि, दिव्यचक्षु सामने आयें। इस तरह से कितना सुन्दर मार्ग प्रशस्त होगा। हम तो ऐश्वर्यशाली हैं। हमारे पास कोई एक ही मार्ग नहीं है। प्रार्थना इसका प्रारम्भ है। यदि आपकी बुद्धि में यह ज्ञान हो जाता है कि परमात्मा है और परमात्मा की सत्ता का उद्घोष करने में हमें लज्जा, शर्म, असन्तोष नहीं होना चाहिए तो आप कृतकृत्य हैं। आप सोचें हम आत्मा हैं, हमारा स्वरूप आत्मा है, जिसका शब्द ज्ञान है। हम उसका साक्षात्कार करेंगे, साक्षात्कार पायेंगे। हमारा सत्य आत्मा है, यह कहने में जिस दिन भारत के मनुष्य में लज्जा नहीं होगी, उस दिन वह इस कठिन समय में से रास्ता निकाल पायेगा। प्रार्थनाओं का उपक्रम, इस प्रकार की प्यास जगाने का उपक्रम है; सम्बन्धों में बाँधने का, श्रद्धा को जगाने का उपक्रम है। इसलिए विद्यालयों में, छात्रालयों में, परिवारों में प्रार्थना के उपक्रम होते रहेंगे, ऐसी मैं आशा करती हूँ।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम :

भक्तियोग : अद्वैत के अधिष्ठान पर द्वैत का मधुर योग

दिनभर के परिश्रम के बाद आप सब प्रार्थना-सभा में शामिल होने चले आये हैं, यह देखकर साश्चर्य आनन्द होता है। यह भजन जो गाया गया है– 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे प्रीति पराई जाणी रे' सुदूर गुजरात के जूनागढ़ जिले में और अन्य स्थानों पर भी, उसका काफी प्रभाव है। हमारी संस्कृति एवं सामाजिक चेतना पर, धर्मग्रन्थों एवं धार्मिक परम्पराओं और सत्संगों पर धूल चढ़ी है। जो परम्पराएँ संकेत देने के लिए बनीं, उन परम्पराओं की संवेदनशीलता क्षीण होती चली गयी और आजकल केवल कलेवर देखा जाता है। मन्दिर खड़े हों, मस्जिदें खड़ी हों, गिरजाघर खड़े हों, आरतियाँ उतारी जाती हैं, भोग लगाया जाता है, रामायण की कथाएँ होती हैं, श्रीमद्भागवत की कथाएँ होती हैं, लेकिन कभी भी जीवन को धर्म से जोड़ने का प्रयास नहीं होता। दिन भर बीतता है, विषयों के बीच, पदार्थों के बीच, व्यक्तियो के बीच, भोग के सम्बन्ध में तथा राग-द्वेष-भय के सम्बन्धों के बीच। चौबीस घण्टों में कुछ भी समय हम शेष नहीं रखते हैं कि सत्संग करें, सन्तों का संग करें। अक्षुण्ण कायारूपी जो ग्रन्थ हैं, उनकी वाङ्मयी कृतियाँ रखें। इन सत्संगों के द्वारा जीवन के जो शाश्वत, सनातन सत्य का सङ्ग किया जाता है, वह सत्य क्या है? उसकी थोड़ी सी चर्चा इस सन्ध्या पर आपके साथ करूँगी।

अब यह धारणा-सी बन गयी है कि जिनको जीवन से दूर भागना है, जिम्मेदारियों से मुँह मोड़ लेना है, जो विजय-मार्ग से लड़ते नहीं हैं, या जो हार गये हैं, थक गये हैं, भागते आये हैं, उनके लिए धर्म है, मन्दिर हैं, अध्यात्म है, संत हैं, सत्संग इत्यादि है। भक्ति जीवन की जिम्मेदारियों से भागने की एक परम्परागत शैली है, परिष्कृत मार्ग है या ये जाल बिछाये हुए हैं, ऐसी धारणा आपके अन्दर नहीं होनी चाहिए। इन धारणाओं के कारण, परिचय पाये बिना भी, आज का युवक दूर हटता चला जा रहा है। वह धर्म से दूर हटता चला जा रहा है, धर्म एवं अध्यात्म के विषयों से भी। जो कुछ मैं समझ पायी हूँ, अपने जीवन में धर्म या अध्यात्म के विषय में, उसके आधार पर आपसे निवेदन है कि पलायनवादी न बनें। 'यह विश्व नहीं रे माया, यह विश्व प्रभु की काया।' यह सारा विश्व मिथ्या माया, उपेक्षणीय नहीं। मुझे तो इसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भौतिक कहने में संकोच होता है। मैं इसे आध्यात्मिक कहती हूँ। इसको भौतिक कहने का कोई आधार ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला।

समग्रता की सत्ता ही रहस्य है। उसी का नाम है–प्रभुसत्ता। जीवन ही परमात्मा है। धर्म हो या अध्यात्म हो—दोनों आन्तरिक क्रांति घटित करते हैं। जीवन जीने के लिए है, जीवन मौत से उलझ जाने के लिए है, न कि उससे दूर भागने के लिए है, बल्कि जो भी रूप सामने जीवन का आता है, वह मुक्त स्वीकार के लिए है। जो द्वन्द्व उपस्थित करे, उन द्वन्द्वों में कहीं भी उलझाये बिना, गुजर जाना होगा। एक बार शून्य की खुमारी को देखकर जिस आँख ने शून्य को प्राशन किया, वह न सुख में अटकेगी, न दुःख में भटकेगी; न हर्ष में, न शोक में; न जन्म में, न मरण में। इस प्रकार हमें वह द्वन्द्वों से गुजर जाने की शक्ति देता है। जो आन्तरिक क्रांति करता है, वह है धर्म, वह है अध्यात्म।

हममें बुराइयों का जन्म होता है, इसका कारण है कि हमने धर्म को जीवन से अलग कर दिया; हमने मान लिया भौतिक जीवन को अध्यात्मिक से अलग। हमने मान लिया अपने भौतिक जीवन को एक जीवन। यदि एक किसी कोने में माला जपी जाय, तो वह हो गया ध्यान। क्या जीवन को बाँटा जा सकता है?

जीवन सार तत्त्व है। जहाँ आदमी धरती पर पाँव रखे, वहीं "विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम्" कहना है। शब्दों के मूल में देखें। उसका व्याकरण देखें, उसका महत्त्व देखें तथा शब्दों से मिलन रखें। लेकिन सर्व ऊर्जा के बीच विराजमान होने से उसको उन्होंने ईश्वर कहा। आप अपने को देखिए, अपने घरों को देखिए, आसपास के समाज को देखिए। जब सुबह स्नानादि करके बैठ जाते हैं और 'श्री राम जय राम, जय जय राम' का जप करते हैं, बड़ा अच्छा काम है। स्मरण हो रहा है भगवान् का। लेकिन यह जो 'श्रीराम जय राम, जय जय राम' का जपना हुआ, रटना हुआ, इसका महत्त्व हमारे सामने है। दशरथ के बेटे राम जी का नाम लेते हैं। 'चौथे राम थे सबसे न्यारे और चौथे राम थे सम्र सर सारे। एक राम दशरथ का, दूजा राम घट-घट में बैठा। तीजै राम सबसे प्यारा' सबसे प्यारा राम को दशरथ का ही बेटा मानें, तब भी ठीक है। तो उनका जीवन क्या है? यह जो धरती है, पवित्र हुई है, उनके चरण-चिह्नों से। वह तो एकपत्नीव्रत धारण करने वाले थे। आप राम के नाम को, आदर्शों को कैसे जीवन से अलग करेंगे? लेकिन हमको कोई संकोच नहीं, झिझक नहीं है कि हम 'श्रीराम जय .राम, जय जय राम' कहते चले जा रहे हैं और घर के भीतर हम असत्य का आचरण भी करते चले जा रहे हैं। यहाँ हो गया जीवन को खण्डित बनाने का प्रयास। यह एक घंटे का 'राम नाम' हमें ज्ञानशील, क्रियाशील बना

५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देता है। यह सदाचार का और किसी श्रद्धा का द्योतक लग रहा है। राम जैसा संयमी, एकपत्नीव्रत धारण करने वाले मर्यादा-पुरुषोत्तम निकले। मेरे जीवन में मर्यादा के ऐश्वर्य का संचय हो, मेरे जीवन में शक्ति हो, तब तो राम नाम का जप करना सार्थक होगा।

जब सही अर्थों में जप करेंगे, तो 'मैं तेरा हूं और तेरे शरण में हूँ', यह भाव आयेगा। जीवन प्रभु को सौंप दिया जायेगा। अब कृष्ण के जीवन को देखिए। एक भी काम उन्होंने अपने लिए किया? बचपन से लेकर अन्त तक न एक युद्ध अपने लिए लड़े, न युद्ध के विजय में श्रेय ही लिए। यह जीवन-रसिक होते हुए भी संन्यास है। जो रसिक न हो, वह संन्यासी बन ही नहीं सकता। कृष्ण के जीवन में ऐसा ही कुछ दिखाई पड़ता है। श्रीकृष्ण का नाम लें, जो अन्याय से जूझने वाले हैं, स्वजनों के काम में जूझने वाले, दौड़ने वाले हैं। ऐसे श्रीकृष्ण को हम पूजें और फिर उसके अनुसार चलें। लेकिन हम एक इन्च जमीन के लिए लड़ें और किसी ने कुछ कह दिया तो फावड़े निकालकर मार दें, फिर भी कहते रहें कि हम वैष्णव हैं। तो इस प्रकार हम जीवन को काट रहे हैं, खण्डों में बाँट रहे हैं। एक तरफ तो हम जप करते हैं और दूसरी तरफ घर में, वाजार में, दफ्तरों में, नौकरी करने के स्थान पर हम जिस नाम का उच्चारण करते हैं, जिस नाम का संकेत करते हैं, उसको हम भूल जाते हैं और उसके विपरीत आचरण करते हैं।

हमने धर्म को जीवन का अनुष्ठान तथा सारभूत तत्त्व नहीं माना है। हमारे पास सारभूत तत्त्व क्या है—धन है, पैसा है। सुना है कि बापू कहते थे कि "अन्न के बिना, जल के बिना, पानी के बिना मैं रह सकता हूँ, लेकिन प्रार्थना के बिना मैं जी नहीं सकता हूं।" हमारे जीवन में नाम लेने का, प्रार्थना करने का जो सारा का सारा व्यापार है, वह सारा का सारा भावहीन हो गया है और ध्यान पैसे में चला गया है। इसलिए हमें आपसे बहुत प्रेम से दो बातें कहनी हैं कि प्रार्थना जीवन से पलायन नहीं है, बल्कि जीवन की समस्याओं से जूझने के लिए आन्तरिक बल देने वाला है। वह एक तत्त्व है, द्रव्य है।

एक दूसरी बात कहनी है आप से, कि सारा का सारा संसार मृत्यु के भय से बड़ा पीड़ित रहता है। डर है, कि मरेंगे। मरेंगे तो इस डर से मारने के लिए पहले निकल पड़ते हैं। यह मृत्यु का जो भय है, इसे इस देश की संस्कृति ने मिटा दिया है। अपने उपदेशों के द्वारा जो कार्यक्रम कल से चल रहा है, इसके माध्यम से सेवा करने का अवसर मिला है। इकट्ठा हो कर यहाँ मृत्यु के भय को निकालना है। जैसे गणित में कागज पर एक बिन्दु रखते हैं पेंसिल से और कहते हैं—एक बिन्दु है। इसकी लम्बाई भी नहीं, चौड़ाई भी नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन कागज में जब पेंसिल से बिन्दु रखते हैं, तो लम्बाई भी है; चौड़ाई भी है। बिन्दु को खींचने से रेखा बनती है। बिन्दु को खींचने पर रेखा बनी, वैसे जीवन के बिन्दु का जो विस्तार है, उसकी रेखा के एक छोर पर है जन्म और दूसरे छोर पर है मरण। जन्म और मृत्यु एक ही रेखा के दो ओर-छोर हैं। जीवन का अन्त नहीं है और जन्म में मरण का भान नहीं है। जीवन का अक्षय, अनन्त और अनादि स्वरूप है। जीवन को उपनिषदों, वेदों और दार्शनिकों के माथे पर छोड़ दीजिए।

गाँव-गाँव घूम करके अलख जगाने वाले साधुओं और सन्तों ने अपने दोहों में, छन्दों में, चौपाइयों में तथा श्लोकों में घोल-घोल करके भारत के जन-मानस को पिलाया है। जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के अभिन्न अंग हैं। इसमें डरने लायक कुछ नहीं। जहाँ जन्म है, जीवन है, वहाँ मृत्यु उपस्थित है। चिर साक्षी है। एक रहस्य है—मृत्यु कब आयेगी, कहाँ आयेगी, किस प्रकार आयेगी? इसलिए तत्पर रह करके हर क्षण में, प्रति पल में, व्यवहार में मानवजीवन का अन्तिम क्षण हो, अन्तिम पल हो, इस भावना से जीते जायें। सारा सत्त्व उसमें उड़ेल कर जीते जायँ।

मुझे एक घटना याद आ गयी। महाराष्ट्र में एक प्रतिष्ठान नामक स्थान है। वहाँ एकनाथ नाम के संत थे, जिन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर टीका की है। भजन उनके बहुत प्रसिद्ध हैं। 'ज्ञानेश्वरी' ग्रन्थ का संशोधन उन्होंने करके कुछ प्रक्षेपित अंश निकाल कर प्रति बनायी है, जो आज एक सन्दर्भ-प्रति मानी जाती है। वे बड़े ही प्रारम्भ से सत्यव्रत पालन करते थे। उनके एक भक्त कहने लगे—'महाराज हम क्या करें? हम तो बहुत परीशान हैं, दुःखी हैं अपनी पत्नी से, बच्चों से, आस-पास के लोगों से। मन प्रसन्न नहीं।' महाराज ने कहा—'ठीक है, युक्ति तो बतला देंगे। लेकिन भले आदमी, आज के सातवें दिन बाद तुम्हारी मृत्यु होनेवाली है।' बोले—'ऐं, सातवें दिन ही मृत्यु है।' संत बोले—'हाँ, सातवें दिन ही मृत्यु है, तुम्हारी बस मृत्यु है।' सुनकर चले गये। घर जाकर पहला काम किया - श्रीमतीजी को बुलाकर माफी माँगी, क्षमा माँगी और बोले—अब तो मैं सातवें दिन जानेवाला हूँ। दो बच्चे खेल-कूद कर आये, उनसे कहा—माफ करना बच्चों, अब तो हमें जाना है। बड़ी तकलीफ हुई और उसी दिन से पाँच दिनतक उनके मुख पर क्षमा-याचना ही रही। बड़े मीठे बोलते, मधुर बोलते। किसी से झगड़ा नहीं रखते, साथ-स्नेह का व्यवहार करते। इतनी शान्ति से उनके पाँच दिन बीते। छठें दिन गये महाराज के पास महाराज ने कहा—'कहो भाई, कैसे आये? पाँच-छः दिन कैसे बीते?' बोले—'महाराज, बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे पता नहीं चलता कि इससे पहले मैं इस ढंग से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्यों नहीं जी रहा था। हर बात पर मैं बिगड़ पड़ता था और लड़ता था, रूठ जाता था, गुस्सा करता था। ये पाँच दिन इतनी शान्ति से बीते, अद्भुत शान्ति से बीते।' तो महाराज ने कहा—'देखो, सावधान रहने का कारण मृत्यु है।'

कहते हैं, मृत्यु हमारी चोटी पकड़े हुए है। यह जानते हो कि मृत्यु चिर उपस्थित रहस्य है। अव्यक्त के अवगुंठन में छिप करके मानो साँस चल रही है। मानव को देखने के लिए हम कैसे जी रहे हैं! मृत्यु का महाकाव्य, जो भारतीय संस्कृति हमें सिखाती है, आज उसे हम भूल गये हैं। इसीलिए हमने मृत्यु को अपशकुन माना, अशुचि माना, डरने का विषय माना। लेकिन इस संस्कृति ने, जन्म और मृत्यु को एक प्राण-प्राणायाम माना। प्राण-प्राणायाम एक शब्द होता है, उसको इस ढंग से देखना कि जहाँ मृत्यु का भय होता है, वहाँ जीवन जीने की तत्परता आ जाती है।

प्रत्येक सन्दर्भ में मुझे आपसे बहुत महत्त्वपूर्ण बात कहनी है। जीवन आने वाले कल में नहीं है। वर्तमान में भविष्य देखना है। जो काम कल करना है, उसे आज करूँगा, इस प्रकार आज पर भरोसा करना है। इस क्षण में जीवन है, जिसको कहते हैं शाश्वतता। जो कुछ भी हम कर देते हैं, जिसको हम और आप पल कहते हैं, क्षण कहते हैं, यह सम्पूर्ण जीवन का अमूल्य क्षण है। वह क्षण हम कहीं खो न दें। वर्तमान क्षण के पूर्व में ही मृत्यु छिपी है। इस कारण सावधान होकर तत्परता से जियें।

एक व्यक्ति आपके सामने आयें—बच्चा है, बुजुर्ग है, आपका भाई है, भला है, बुरा है चाहे जैसा हो, वह आपकी मानव-जाति का है। धर्म सिखाता है कि धर्म का जो विशिष्ट रूप तेरे सामने है, उसके साथ सावधान होकर कार्य कर। लेकिन जीवन की अनन्तता और उसकी सार्थकता काम के साथ एक क्षण जीने में है। व्यक्ति के साथ जीना और व्यक्ति के रूप में सम्पूर्ण मानव-जाति सामने खड़ी है। इसके प्रति सावधान रहें।

इसीलिए आपसे कह दूँ कि अध्यात्म के बिना यह क्रान्ति कौन लायेगा? समाज में हमें जीना है, लेकिन जीवन की सनातनता को देखने में और व्यवहार करने में, इस आत्मा का ध्यान रखते हुए करें, तो फिर सभी सुख जो हैं, साधन बनते हैं। पर्व-धर्म बन जाता है, जीवन जीना। भक्ति की भूमिका साधना का अधिष्ठान है। अद्वैत के अधिष्ठान के बिना प्रार्थना या भक्ति हो नहीं पाती। उस एक का ख्याल, उस एक का मान प्रार्थना-द्वारा होता है। तब हम सर्व समाज को तन की, मन की सहायता देते हैं। उसके द्वारा अपने को पवित्र करते हैं। अब देखिये, अध्यात्म का कितना महत्त्व है। जो आज जी रहे हैं, अध्यात्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के नाम से, उनको देख-देख करके, हर तत्त्वों को तथ्यों की कसौटी पर, आदर्शों की कसौटी पर खोजना है।

कुछ वर्षों पहले की घटना है। नेपाल गयी थी। नेपाल में एक विश्व-विद्यालय एवं कुछ सांस्कृतिक संगठनों के लोगों ने हमें बुलाया था और गांधी-वाद पर बोलने का विषय था। दो-एक प्रवचन चले। उन्होंने कहा—गांधी जी की पूजा वहाँ होती है, लेकिन हिन्दुस्तान में कोई गांधीजी को अपनाता नहीं है। मैंने कहा कि नहीं अपनाते हैं, तो क्या गाँधी जी कोई हिन्दुस्तान के अकेले के थे ? क्राइस्ट को क्रिश्चियन देशों ने छोड़ दिया। गाँधी जी ने उनको अपनाया, रहस्योद्घाटन किया। इस प्रकार गांधी जी ने ईशु को पढ़ा, समझा तथा उनको व्यवहृत किया। हिन्दुस्तान में कोई गाँधी को नहीं पढ़ता तो क्या, आप पढ़ो, समझो। गाँधी केवल हिन्दुस्तान के लिए थोड़े थे। उनको आप मौलिक और स्वतन्त्र रूप में देखो, समझो।

जीवन की पवित्रता और समग्रता का प्रश्न हमारे सामने है। इतनी प्रार्थना कर लेने से तथा धार्मिक क्रिया कर लेने से यदि ये हमें मिलें, तो हम घर-बार सुरुचिपूर्ण रखेंगे। न जाने, नारायण किस रूप में आ जायँ। शरीर स्वच्छ करना है, भजन करना है। हम सावधान होकर करेंगे। यह शरीर प्रभु का निवास-स्थान है। जीवन में परिवर्तन आ जायेगा, यदि हम मान लें कि जीवन पवित्र है, कर्म पवित्र है और प्रत्येक क्षण पवित्र है। जहाँ पाँव रखते हैं, वह स्थान पवित्र है। इसकी पवित्रता हमारी दृष्टि तथा प्रवृत्ति पर निर्भर है। उसको हम बदल सकते हैं। जीवन की पवित्रता में प्रभु की पवित्रता का दर्शन कर सकते हैं।

मेरे मित्रों ! यदि धर्म-तत्त्व को सही रूप में समझोगे, तो आज के युग की आधी बीमारियाँ अपने आप समाप्त होंगी—जैसे क्या कहते हैं—रक्तचाप की बीमारी। और तमाम नाम हैं—चिताग्रस्त रहना है, नींद नहीं आती है, चैन नहीं पड़ता, ये सारे जो हैं, असन्तुलन के परिणाम हैं। असन्तुलन के कारण आने वाली बीमारियों की जितनी दवाएँ बनी हैं, बीमारियाँ बढ़ती चली जा रही हैं, दवाइयों के साथ। आश्चर्य होगा, लेकिन यह देखा गया है, जो योग-मार्ग पर, ध्यानमार्ग पर चल पड़ते हैं, जो नम्रता के आयाम के यात्री बन जाते हैं, उनमें बीमारियाँ नहीं आती हैं, क्योंकि चित्त की दशा व्यवहार में संतुलित रहती है। असन्तुलन एक विकार है।

कर्म करते हुए संयमित रहें। कर्म करने के बाद मन में आसक्ति न हो। भक्ति के पथ में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चलें। भक्ति धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के परे की बात है। भक्ति पंचम पुरुषार्थ है। इसको मधुर-अद्वैत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा गया है। वर्तमान में जीने के लिए निश्चिन्त होकर बिना भय के आनन्द-पूर्वक जीने की शक्ति इसी में है।

हमारे पिण्ड में, हमारे ब्रह्माण्ड में जीवन की सार्वभौम सत्ता है, किन्तु सत्त्व-रूप जिनको दीखता है अपने में तथा विश्व में, वे कैसे मस्ती में जीते चले जाते हैं, सुख-दुःख से गुजरते हैं।

किन्तु जो संघर्ष पैदा कर रहे हैं, उनके पास भक्ति करने का समय नही है। वे संघर्ष पैदा करने में, अराजकता पैदा करने में अग्रसर हैं। लोग कहते हैं कि गाँधी जी के पास कोई जादू था। जो जाय, वह भी डरता था कि कहीं उनके जादू में न आ जायँ। कोई वशीकरण था। यह वशीकरण क्या होता है? यह आत्मीयता का, जीवन की एकता का भान है। स्पष्ट है कि अद्वैत के अधिष्ठान पर द्वैत के साथ संगीतमय मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की कला ही भक्ति-योग है।

इसी के लिए प्रार्थना और सत्संग होते हैं। मालूम नहीं, कब वह दिन आयेगा कि भारतवर्ष के गाँव-गाँव में, नगर-नगर में और घर-घर में बच्चे, माता-पिता, सभी दिन में कम से कम एक बार इकट्ठे होकर प्रभु का गुणगान करेंगे, पूजा करेंगे और भक्ति करेंगे साथ में बैठकर। मौन ही सही, किन्तु एक बार साथ बैठकर प्रभुत्व में लीन होंगे। मेरे प्रभु सगुण हैं, निर्गुण हैं और दोनों के अतीत रहते ह। साकार-निराकार मिलाकर उनकी समग्रता है। अपने इस अस्ति-नास्ति दोनों के कारण वे ही हैं। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार तथा अन्धकार-प्रकाश जितनी तरह की कल्पनायें हो सकती हैं, सबको साकार करती हुई वह जो सत्ता है, वही प्रभु है। वह अखण्ड है। वह अनन्त है। वह अविभाज्य है। वही परमात्म है। इसलिए वह समन्वित शक्ति है।

ऐसे प्रभु के स्मरण से ही मनुष्य को अपने अहंकार, भ्रम इत्यादि चूर-चूर होते दिखाई देते हैं। इस विभुता के सामने अपने संसार की जो सिद्धियाँ हैं, वे छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं लगने लगती हैं। प्रभु की सत्ता मन में, अंग में, प्रत्यंग में घुलने लगती है। एक तरफ पुरुषार्थ का आत्म-विश्वास हो, 'अहं' का एहसास न हो, दूसरे को साथ रखके, सबके साथ-साथ मिलने की शक्ति हो, तो शक्ति मिल सकती है। तब सुख का पारावार हो जायेगा। इससे अधिक कोई वैज्ञानिक क्या कहेगा? सत्ता के रूप में, प्रभुता के रूप में, किसी भी रूप में, जहाँ कभी भी उसका साक्षात्कार बन सके, करें। कर्म से, ज्ञान से, ध्यान से, भक्ति से, तन से, मन से या अन्य किसी साधन से, जिस रास्ते से मन जा रहा हो, उस रास्ते से, विचार से तथा सद्गुणों से करें। लेकिन जिस तत्त्व में हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहते हैं, उसी का हम विस्तार हैं—क्या कहूँ आप से, जल में मछली जल की बनी हुई है, जल में रहती है और जल में ही संचार करती है। उसी प्रकार मनुष्य प्रभुता से बना हुआ है, प्रभुता में उसका निवास हैं और प्रभुता में संचार है। पता नहीं, आपने देखा है या नहीं। नदी-किनारे गये और मुट्ठी में तरंग पकड़ने लगे तो मुट्ठी में जल भर गया। वैसे-वैसे जहाँ-जहाँ मनुष्य को स्पर्श करते हैं, हाथ में प्रभुतत्त्व आ जाता है। अस्तु ! धर्म और अध्यात्म दोनों अभिन्न हैं।

आप लोगों ने यहाँ आकर मुझे सुनने का समय दिया। मेरे मन में एक झिझक बनी हुई है- हिन्दी भाषा का अध्ययन नहीं है, लेकिन लगता है कि आप लोग समझ रहे हैं।

भक्ति-जीवन में जीवन को कैसे जियें, जीवन की समग्रता का आदर कैसे करें। जो परिस्थिति, जो स्थिति, जो आकृति अपने सामने आये, उसे आदरपूर्वक देखें, अपने सामर्थ्य के अनुसार, योग्यता के अनुसार। बिना इसकी चिंता किये कि फल किस रूप में प्राप्त होगा, परिणाम क्या होगा। यह जो जीवन है, उसको जीते चले जायें। जीवन जीने के लिए है। अतः धर्म है—जीवन को जीना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टम :

ध्यानयोग

इस समय हम आपके समक्ष चर्चा करेंगे 'अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीम्' नारायणी श्रीमद्भगवद्गीता की, जिसको लोकसुलभ, लोकमान्य बना दिया संत विनोबा जी ने। उन्होंने इस श्रीमद्भगवद्गीता को संसार की अनेकानेक भाषाओं में जनसाधारण के लिए उपलब्ध करा दिया। भारतीय संस्कृति पर संत विनोबा जी के बड़े उपकार हैं, जो चिरस्मरणीय हैं, इसलिए उनकी इस पावन सेवा के लिए श्रद्धेय विनोबा जी के चरणों में प्रणाम करते हुए, इस संध्या का जो प्रस्तुत विषय है, उस पर आपके सहयोग से मनन करने का साहस करती हूँ।

साश्चर्य आनन्द होता है कि ध्यान विषय पर प्रवचन होगा, यह मालूम होने के बावजूद इतनी संख्या में आप सब उपस्थित हो गये हैं। मैंने सोचा था कि विषय गंभीर है, कठिन है, तो शायद इने-गिने, छँटे हुए कुछ लोग आयेंगे। लेकिन आप का यह रसपूर्ण श्रवण एवं प्रामाणिक जिज्ञासा मेरे लिए बहुत बड़ा संबल बन जाती हैं।

इस संध्या को परीक्षा मेरी और आप की भी होने वाली है, क्योंकि जिस विषय पर आप और हम मिलकर सहचिन्तन करना चाहते हैं, वह विषय उतना तन से संबन्धित नहीं है, जितना मन से। मन है अन्तःकरण, भीतर का करण। सूक्ष्म करण ज्ञानेन्द्रियों के समान दृष्ट नहीं है, गोचर नहीं है। अव्यक्त मन के विषय में बात करनी है। इसलिए विशेष सावधानी अपेक्षित है—वक्ता और श्रोता दोनों की ओर से। पिछले २०-२५ वर्षों से ध्यान के विषय में इतनी उत्सुकता संसारव्यापी हो चुकी है कि उसको देख कर आश्चर्य होता है। इसमें केवल कुतूहल ही नहीं है, ज्ञान के सम्बन्ध में जिज्ञासा भी है। यह जिज्ञासा का ज्वार विशुद्ध मानव-परिवार है। इस परिवार में क्यों चला गया, क्या कारण है? कोई न कोई ऐतिहासिक अनिवार्यता उत्पन्न होती है, जो चेतना को जगा देती है।

ऐसी घटनाओं में मुख्य घटना, जिसका ध्यान के विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, शक्ति के विस्फोट करने की कला है। यह मनुष्य को हस्तगत हुई और आनन्द-शक्ति हाथ में आई। उसके साथ-साथ यह उपलब्धि आई, जिसमें उन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने मस्तिष्क-जैसा मस्तिष्क बना लिया। यह घटना है, जिसकी पार्श्व-भूमि दो-तीन मिनट में देख लें। सम्पूर्ण मानवजाति की चेतना में जागृति नहीं हुआ करती है, आन्दोलन नहीं उठते हैं, तूफान और आँधियाँ नहीं आती हैं। जब तक कोई न कोई विशेष कारण नहीं उपस्थित हो जाता है, तब तक 'कम्प्यूटर' और 'इलेक्ट्रानिक ब्रेन' जैसे उत्पादन नहीं बनते। यह 'ब्रेन' बनाया मनुष्य ने, किन्तु आकार वह नहीं है। अब वह अपने आकार में भी बना रहे हैं। जिस मस्तिष्क-उपादान का हमारा मस्तिष्क बना हुआ है, उस प्रकार का सांयोगिक मस्तिष्क बनाने की भी कोशिश ह अभी नहीं बना पाये, लेकिन उन्होंने 'इलेक्ट्रानिक' की मदद से, जो यह कृत्रिम दिमाग बना लिया है, उसमें मन की अनेक शक्तियाँ संक्रान्ति कर रही हैं। ऐसा यन्त्र है, जिसे 'इलेक्ट्रानिक ब्रेन' या 'कम्प्यूटर' के नाम से आप भी ग्रन्थों के द्वारा जानते होंगे। आप में से कुछ लोगों ने उसे देखा भी होगा। बड़ा अजीब यन्त्र है। जिस प्रकार हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा जानकारी को प्राप्त करते हैं, वह भी प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार हमारे दिमाग के भीतर इन्द्रियों के द्वारा मिली हुई जानकारी होती है तथा उसका परिणाम—क्रम, व्यवहार होता है, उसी प्रकार मानव-निर्मित इस मस्तिष्क में सब बातें मशीन द्वारा सहज रूप से होती हैं। जानकारी का परिणाम-क्रम बनाना, उसको सङ्गठित करना, एक ज्ञान के रूप में धारण करना और उसमें से निष्कर्ष निकालना—यह सब होता है।

ग्रहण, धारण और पुनरावाहन, ये तीन काम हमारे मस्तिष्क के हैं। इस मस्तिष्क ने भी इनको ले लिया है। जो मस्तिष्क हमने बनाया है, उसमें गजब का विस्तार है। मैंने १९५९ में लन्दन में देखा, वहाँ 'इलेक्ट्रानिक ब्रेन' किस प्रकार चित्र बना देते हैं? आप जो कहेंगे, वह करेगा। जैसे, जॉन कैनेडी का चित्र आप चाहें, तो उसके रूप-लक्षण की सूचना उस मशीन में, कागज में भरकर डाल दीजिए। दूसरे छोर तक आप पहुँचते हैं, कि जॉन कैनेडी का चित्र बन कर आप के सामने आ जाता है। आपको इन्द्र-धनुष चाहिए, तो आपको इन्द्रधनुष की जो जानकारी है, उसको मशीन में भरें। आपको इन्द्रधनुष मिल जाता है। परीक्षाओं के प्रश्न-पत्रों की जाँच कर सकते हैं। यह मशीन केवल गणित की ही नहीं, भाषा विषय की भी है। अस्पताल में बैठकर निरीक्षण और 'केस हिस्ट्री' ले सकते हैं। आप कोशिश करके निदान तैयार कर सकते हैं।

मैं संक्षेप में ही कहना चाहती हूँ कि मनुष्य ने अपने लिए एक चुनौती खड़ी कर दी है इस प्रकार का यन्त्र बनाकर। अब, उसके सामने एक और सवाल भी आया है। यदि यह मन सोच सकता है, अपने में मिली हुई जानकारी का सङ्गठन करके उसमें से निष्कर्ष बना सकता है, शतरञ्ज खेल सकता है, हमारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारे कार्यों को सम्भाल सकता है, तो मन के पास यन्त्र से भी अधिक क्या है ? अर्थात् मनुष्य के पास यन्त्र से अधिक क्या है ? मन और बुद्धि से अधिक मनुष्य की सम्पदा क्या है ? इस चुनौती ने ही यन्त्र बनाया।

उसके कारण अब वह ध्यानमार्ग की तरफ आया है। इस ध्यानमार्ग के लिए चित्त में आशा है कि पूर्व से प्रकाश मिलेगा। 'ध्यान' शब्द आया है संस्कृत-भाषा में। जन्म हुआ इस शब्द का भारत में। बड़ी लम्बी यात्रा इस शब्द ने की है, चीन तक पहुँचा है। उत्तर में तिब्बत होते हुए तो 'ध्यान' शब्द 'चान' बन गया, 'चान' शब्द जापान तक पहुँचकर 'जेन' बन गया है। आदमी एक दूसरे के साथ वार्तालाप करने बैठ जायँ और एक दूसरे के कान में एक ही शब्द दुहराते चले जाँय, तो अन्त में शब्द का जो स्वरूप हमारे सामने आयेगा, वह मूल शब्द से न केवल भिन्न होता है, बल्कि विपरीत भी हो जाता है। जिन्होंने बचपन में कभी यह खेल खेला होगा, उन्हें पता होगा। शब्दों की यात्रा– भौगोलिक यात्रा, सांस्कृतिक यात्रा और समय के माध्यम से होने वाली यात्रा अपने आप में एक रोचक विषय है।

इससे पहले 'धारणा' शब्द से आज प्रभात में हमने थोड़ा सा परिचय पाया था। धारणा-शक्ति, धृति-शक्ति से जो कुछ मिलता है, उसको धारण करना इसका प्रयोजन है। इसका हठयोग के अभ्यास में और मन्त्रयोग के अभ्यास में बड़ा महत्त्व है। अतः धारणा का अभ्यास कराया जाता है। आँख के सामने कोई छवि रख दी, किसी देवी-देवता का विग्रह रख दिया, कोई बिन्दु बनाकर रख दिया और उसकी तरफ आँख लगाकर, टक-टकी बाँध कर देखते रहे। दृष्टि को आपने वहाँ स्थिर कर दिया। दृष्टि के माध्यम से वृत्तिनेयों को स्थिर कर का, यह जो पुरुषार्थ है, इसको त्राटक भी कहा जा सकता है। उसका अभ्यास करते हैं। वह धारणा मजबूत करने का मार्ग है। वह ध्यान नहीं है। मन्त्र का जप किया, उपांशु जप किया। उसके अर्थ का मन में भाव नकारते चले गये, उच्चारण करते चले गये। यह जो एकाग्रचित्त और वृत्तियों को साधने का पुरुषार्थ किया—शब्द के मार्फत, उच्चारण के मार्फत, वाणी और श्रुति के मार्फत, वह भी धारणा का अभ्यास है। यह एकाग्रता की प्रक्रिया है, यह ध्यान नहीं है।

ध्यान के नाम से ये क्रियायें आज संसार में प्रचलित हैं। धारणा की जाती है। धारणा का अभ्यास किया जा सकता है। धारणा एक मन-शरीर-विषयक क्रिया है। तन और मन की संयुक्त क्रिया या संयुक्त कर्म है। अतः दोनों में बहुत महत्त्व का भेद है। मुझे आपके पास थोड़े में रखना है। धारणा की जा सकती है। शरीर और मन का संकल्प ही तो कर्म हो सकता है तथा उसके हेतु हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं। उससे शक्तियाँ बढ़ती हैं। मन की और बुद्धि की जितनी शक्तियाँ होंगी, जितनी सुप्त शक्तियाँ होंगी, पड़ी हुई होंगी—शरीर के भीतर, केवल मन और बुद्धि के नहीं, वे धारणा के अभ्यास से सचेष्ट बनती हैं; तेजस्वी बनती हैं; उनका विकास होता है। सुप्त शक्तियों की जागृति, जागृत शक्तियों को तेजस्वी बनाना, उनमें जीवन की गहराई पैदा करना—ये सारे के सारे विषय जो हैं, वे धारणा के साथ जुड़े हुए हैं, न कि ध्यान के साथ। धारणा का जो अभ्यास करते हैं, न केवल उनकी इन्द्रियों की शक्तियाँ जागृत होती हैं और विकसित होती हैं, बल्कि अतीन्द्रिय शक्तियों का जागरण भी धारणा के अभ्यास में अवश्यम्भावी बनता है। यह अतीन्द्रिय शक्तियों की जागृति है, जिसको आप अलौकिक शक्ति या परोक्ष शक्ति कहते हैं। इस साधना की एक बड़ी बुलन्द हस्ती हो गयीं, मैडेम ब्लैवेड्स्की। उन्होंने १८७० में न्यूयार्क शहर में 'ब्रह्मविद्या-समाज' की स्थापना की। थियोसोफी का अर्थ आप जानते ही होंगे—ब्रह्म-विद्या। इसका आग्रह है—भ्रातृ-भाव सबमें हो। भौतिकता की ओर से तथा विज्ञान की चकाचौंध करने वाली उपलब्धियों की ओर से अव्यक्त में रहने वाली शक्तियों की तरफ ध्यान आकृष्ट हो, इसका प्रयास हुआ था।

अब यह मुद्दा हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है कि धारणाएँ शरीर और मन के संयुक्त कर्म हैं तथा संकल्प-युक्त हैं। इसका अभ्यास, मैं मानती हूँ, यदि विद्यालयों में कराया जाता है, तो तन और मन दोनों शुद्ध बन सकते हैं। इतना ही नहीं, अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ हर एक व्यक्ति के लिए एक सामान्य बात और सामान्य घटना बन सकती हैं।

अब आइये, ध्यान के विषय पर। ध्यान क्या नहीं है, यह मुझे पहले कहना पड़ा। विज्ञान का अधिक्रम बढ़ता है। वस्तु क्या नहीं है, यह देखने की तरफ पहले चलता है। आज समाज में रहकर हमने ध्यान किया। हम आधा घण्टा ध्यान पर बैठ गये। किसने ध्यान किया ?—मैंने। तो 'मैं' नाम का जो मन का भेद है, वह ध्यान नहीं कर सकता, क्योंकि ध्यान तन या मन की क्रिया नहीं है। ध्यान हमारी समग्रता की एक आस्था है। ध्यान क्रिया नहीं है, वह संकल्पयुक्त कर्म भी नहीं है।

संकल्प करने वाले में जब द्रष्टृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा सर्जकत्व की शक्तियाँ समा जाती हैं, इस मन की समस्त गतियाँ जाकर स्वेच्छा से उसमें समाहित हो जाती हैं, शान्त हो जाती हैं और मन की सभी गतियां स्वेच्छापूर्वक उपशम हो जाती हैं, तब ध्यान की अवस्था बनती है। इसलिए ध्यान में हुआ जा सकता है। यह एक अवस्था है, जिसमें तन की और मन की जितनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रियायें हैं, उनको मनुष्य समेट लेता है। इनको कहते हैं ऐच्छिक क्रियाएँ। इन ऐच्छिक कर्मों को मनुष्य समेट लेता है। जो ऐच्छिक नहीं है : उदाहरणार्थ–श्वासोच्छ्वास तथा शरीर में रक्त का संचालन, उनको समेटने की बात नहीं कहती हूं। शरीर में भी कुछ अनैच्छिक क्रियायें चलती हैं और वैसे ही मन ओर बुद्धि में भी चलती रहती हैं। शरीर और मन के भीतर जो हमारी इच्छा और संकल्प से सम्बन्ध न रखने वाली गतियाँ हैं, जन्म से हमारे साथ चली आयी हैं। हमारा अविभाज्य अंग बनकर ये गतियाँ हैं,। उनको नियन्त्रित करने की बात नहीं है, बल्कि जो स्वैच्छिक क्रियायें हैं, उनको समेटना, कुछ न देखना, कुछ न करना, कुछ न अनुभव करना।

इस अवस्था में प्रवेश किस प्रकार हो सकता है, इस जिज्ञासा को लेकर, इनको समेट कर बैठ जाना, यहाँ तक है मनुष्य का पुरुषार्थ। ध्यान की अवस्था में प्रवेश हो सके, हम ध्यान से सिद्ध नहीं करेंगे। मन ऐसा नहीं कर सकता है; इसपर दोष आ जाता है। लेकिन ध्यान-क्रिया में प्रवेश हो, इसके पूर्व की तैयारी क्या है? इसकी छवि को न देखना तथा कुछ न देखना इसकी सुन्दरता का। इस प्रकार की अवस्था में प्रवेश हमारा हो, बस इतनी इच्छा होनी चाहिए। इसकी तत्परता हो। तत्परता होगी, तो भीतर से प्रतिकार नहीं उठेगा। तत्परता नहीं होगी, तो ध्यान की दिशा में प्रतिरोध उठा करेगा। मन की समस्त गतियाँ सिमट जाती हैं। किसी भी दिशा में, किसी भी प्रयोजन में, मन गति नहीं कर रहा है। ऐसी अवस्था हो जाय, तो देखिये क्या आता है? देखिए तो अपने मन में, वह विदित होता है या नहीं। यह देखने की, जानने की और सीखने की इच्छा से मैंने आपसे कहा। किस शब्द का यहाँ प्रयोग करें, मुश्किल हो रहा है—सीखना और खोज करना कहा जा सकता है। कितनी ही इच्छायें लेकर मनुष्य इसका अभ्यास करता है।

हम शरीर को लेकर, मन को लेकर स्थिर बैठ जायँ। इसमें कोई सिद्धांत या कला नहीं है, तर्क नहीं है। जब जिसकी अनुकूलता हो, स्थिरता का अभ्यास करता है। शरीर को स्थिर करके बैठने का अभ्यास करने लगे। दो या तीन दिन में स्थिर बैठने का शिक्षण होता है। उसमें से अनुभव आने लगता है। देखिए, उस अनुभव की पहली खोज, पहला साक्षात्कार है कि शरीर को बैठना नहीं आता। वह बैठने जाता है स्थिरता से, तो कभी न कभी दर्द उठता है, कभी जकड़न हो जाती है। जकड़न के बिना बैठना स्थिर बैठना है। फिर भी शिथिल नहीं है। स्थिर रहकर शिथिल नहीं है। विश्राम तो है, लेकिन शिथिल नहीं है। सावधान तो है, लेकिन जकड़न नहीं है। सावधानता का इस प्रकार का अभ्यास शरीर को कराता है। इसको सीखते हुए पता चलता है कि शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार से नहीं बैठ पाता है, क्योंकि उसमें कोई व्याधियाँ आती हैं। उसके कारण कहीं न कहीं दर्द होता है। मनुष्य खोजने लगता है कि ये क्यों हैं? अकारण नजर आती है, तब व्यक्ति को ध्यानावस्था में प्रवेश होने के अनुकूल होना पड़ेगा। इसमें हर एक व्यक्ति को अपनी गति को देखना पड़ेगा। कौन जानें, कब राजसिक प्रधान न बन जाय? क्या है सात्त्विक, राजसिक और तामसिक? इसको समझकर वह अपने आहार-विहार में अनुकूलता का अंश लाता है, ताकि शरीर सहजता के साथ बैठ सके।

दूसरी बात यह है कि वह स्वेच्छा से आँखों को बन्द करके वाणी को समेट लेता है; बोलता नहीं है; कहीं बाहर देखता नहीं है कि उसके साथ अन्य क्या घटनायें घटित हो रही हैं। मित्रों! जितना-जितना हम पुरुषार्थ से जीवन में करते हैं, उससे अनन्त-गुणा अधिक हमारे साथ स्वयं घटित होता रहता है। उसको हम देखना भूल जाते हैं। उसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं है, लेकिन परमात्मा की असीम कृपा है कि हमारे साथ उनके संयोग से स्वयं घटित होता रहता है। वह हमारे पुरुषार्थ से अनन्तगुणा अधिक है। वह अधिक महत्त्वपूर्ण भी है। 'प्रकाश-सूक्ति' में हम पढ़ते हैं—बिस्तर पर पड़े हैं, शरीर की वृद्धि है, आरोग्य-लाभ है। हम नहीं करते हैं, तब भी आरोग्यलाभ होता है। निद्रा में विश्राम होता है। वहाँ न हमारा संकल्प है, न गति है, न हरण है और न चरण है, फिर भी घटित होता है। प्रगाढ़ सुप्ति के क्षण में तो इसका यही प्रभाव है, जो हमारे साथ घटित होता है। घटित होने देने की गुंजाइश, अधिकार हम उपस्थित करते हैं। आप बैठ गये शान्ति से, फिर ध्यान आता है—अरे, हम बैठे हैं। हम कुछ सोचना नहीं चाहते हैं, लेकिन हमारे सामने विचार आते हैं। विचार हम कर रहे हैं—इस प्रकार का एक अहंकार। एक भूल थी कि मन की गति के हम मालिक हैं। लाख मनोविज्ञान के ग्रन्थ पढ़िये, लेकिन जब तक अपने मन की गतियों का प्रत्यक्ष अवलाकन नहीं करेंगे, विमर्श नहीं करेंगे, निरीक्षण नहीं करेंगे, उसके साथ एक सौम्य समागम नहीं होगा और उसके साथ एकान्त में बैठकर साक्षात्कार नहीं करेंगे, तब तक मन की गति का पता नहीं चलेगा।

बैठ गये हैं, बैठना सध गया है, तो पता चलता है कि विचारों की गति पर हमारा काबू नहीं है। हम कुछ न करने के लिए बैठे थे, कुछ न देखने के लिए बैठे थे, और ये विचार चल पड़े हैं। एक अनियन्त्रित अराजकता हुई। व्यवस्थित विचारों की गति भीषण गति है। इसमें आँधियाँ आती हैं। यह सब जो आता है, अब साक्षात्कार का कोई विचार, अनुभव, संस्कार, स्मृतियाँ—सुख की, दुःख की, जन्म की, मृत्यु की—वे सब सामने आने लगीं। आप बैठे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और आपका जो अन्तःपट है अन्तःकाया, मन में समायी हुई गतियाँ, संस्कार जो अंकित हैं आपके भीतर—रक्त के अणु बाजार में, वे सामने आयें। आप अपने को ही अपने सामने उद्घाटित होते प्राप्त कर कृतार्थ होते हैं।

ध्यान की अवस्था में प्रवेश होने के लिए जो दूसरा कार्य पढ़ना था बैठना, वह सब हो गया। एकान्त सहन होने लगा। तब दूसरे चरण में यह मन अपनी बेक़ाबू गति को देखकर हारता नहीं है। हैरान हो जाता है—ओ-हो-हो! इतनी ये मन की गतियाँ हैं? इस प्रकार की इतनी विकृतियाँ इसमें पड़ी हैं? इतने दोष-करण हैं? मैं अपने आपको सकुशल मानता था। मैं अपने आपको बड़ा दयालु, अहिंसक मानता था। मुझमें इतना दोष, इतनी क्षुद्रता—मैं उदार समझा था अपने आपको। इतना पागलपन मुझमें है। मन के साक्षात्कार में, प्रत्यक्ष सम्पर्क में, हमारी प्रतिभाएँ, जो हमारे अपने ही हाथों से बँधी हुई होती हैं, चूर-चूर होने लगती हैं। भ्रान्तियाँ टूटने लगती हैं। परिवार में, समाज में, अपने आप के व्यवहार में, हम प्रक्षेपण करते हैं। अपने आपका सलूक, जो दूसरों को दिया हुआ है तथा हमारा जो सारा व्यवहार है, वह एक दूसरे को मिलने का व्यवहार नहीं है, एक दूसरे से मिलने का सम्बन्ध नहीं है। हम लोग एक दूसरे से बँधते रहते हैं। आप से अनुकूल प्रतिकार लेने के लिए मेरा जो स्वरूप, मैं प्रक्षेपित करूँ, तो आप खुश होंगे। ऐसा मुझे लगता है कि मैं प्रक्षेपित करती हूँ। आप भी वही खेल खेल रहे हैं। अतः अनुकूल सम्बन्धों में से अनुकूल फल फलित हो, इसलिए हमेशा प्रक्षेपण की क्रिया है। प्रक्षेपण की क्रिया का यह नाटक चलता रहता है। एक दूसरे के आमने-सामने हम आते नहीं हैं।

कहाँ तक नहीं आते—घर में भी, माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चों के बीच, मित्रों के बीच यह प्रक्षेपण का पर्दा खड़ा हो जाता है। वह ऐसी 'झीनी-झीनी चदरिया' नहीं है। यह 'चदरिया' बड़ी मोटी है। हम भी अपने हाथों से बुन सकते हैं। हमारे अपने बारे में प्रतिमा होती है कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति हूँ। जब वह सामने आता है—एकान्त में अभी बैठे नहीं हैं कि दीखता नहीं। इसलिए यह देखना हुआ अपने आप होने वाली क्रियाओं के द्वारा। उन्हीं के कारण यह घटना हुई। उसमें अपना सबूत जो दिखा, तो आदमी गड़बड़ा जाता है—माँ तो मेरी ऐसा कहती थी, पत्नी मेरी ऐसा समझती थी, मेरे पति ऐसा मानते थे, भाई ने यह कहा, समाज ने वैसा समझा। मैं तो बिल्कुल भिन्न हूँ। स्वरूप का, यह जो ख्याल था, उसे स्वरूप के साक्षात्कार के अर्थ में नहीं लीजिएगा। मैं मन के सबूत का साक्षात्कार चाहती हूँ। यह दूसरी घटना है, जिससे शरीर के साथ परिचय हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ और सीखे और आहार-विहार अनुकूल बनाने के प्रयत्न हुए, पुरुषार्थ हुआ। अब यह हुआ कि मन के साक्षात्कार से आत्म-छलना, आत्म-प्रवंचना करने की जो आदत है, वह ध्यान का अभ्यास करने वालों में तेज है। देख लिया अपने भीतर का, अपना अनावृत्त स्वरूप देख लिया, जैसा है, वैसा है। मन के दर्पण में सामने आप जैसे खड़े हा गये। शीशा में तो आप जैसे हैं, वैसे ही आपको दीखता है। जैसा बिम्ब, वैसा ही प्रतिबिम्ब। मन में आपका जो प्रतिबिम्ब है, वह सामने आगया। मनुष्य सावधान हो गया। मुझमें इतने दोष हैं, इतने गुण हैं, इतनी कमजोरियाँ हैं, सब उसको कालूम हो गया। अब उसके मन में चेतन या अचेतन में कहीं भी कोई चीज ऐसी नहीं है, जो उपेक्षित है या नहीं देखी गई। इसलिए आत्म-छलना, आत्मप्रवंचना नाम की जो बीमारी है, उसमें से व्यक्ति ऊपर उठता है।

मैंने पहले ही कहा था कि अध्यात्म एक विज्ञान है। दो दिन-तीन दिन के लिए इस हेतु हम बैठे नहीं हैं। आत्म-निरीक्षण करने बैठे और फिर भी हमारे व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया। हम सीख नहीं पाये, तो यह ध्यान नहीं है, यहाँ मन नहीं है, यह आत्म-निरीक्षण भी नहीं है। कुछ और है, जड़ता है, भ्रान्ति है।

दूसरे चरण में मस्तिष्क के प्रकट तत्त्वों का समागम होता है। विवेक आता है। पता चला कि अपनी वृत्तियों को हम सामने ही नहीं रख सकते हैं। मुझे अपने हेतुओं का ही पता नहीं था। तब मनुष्य में एक प्रकार की विनम्रता आती है। ऐसे मनुष्य में, जो कायर मन नहीं है, जो न प्रभु के दर्शन करने चला और न आत्मा का। उपलब्धि इस मन में प्रभावित करनेवाली थी। वह मेरे अपने काबू में भी नहीं। हजारों वर्षों के पीछे उसको ले जाता है। 'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल' का उसको बोध होता है। मैंने कितना उसे नचाया है। काम-क्रोध में हो या और विचारों में हो, लेकिन वह सब मन में है। मन शब्द में उसका समावेश है।

अब एक विनम्रता है। जैसे आत्म-प्रवंचना से मुक्त हुए, वैसे एक विनम्रता आयी कि इस मन को लेकर, मन की इस गति को लेकर साक्षात्कार आत्मा का या परमात्मा का असम्भव है। इस मन की गतियाँ पदार्थ-जगत् में, भौतिक जगत् में, दृश्य में और व्यक्त में बहुत काम करती हैं। वही बुद्धि है, मेधा है, स्मृति है, धृति है, कल्पना है, क्षमा है, तर्क है और अनुमान है। ये सारी शक्तियाँ व्यक्त जगत् में बहुत काम की हैं। यहाँ तो उससे उद्धार है, लेकिन जहाँ परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध है, वहाँ मन की यह दयनीयता मन में रहे। यह एक अलग बात है। अब आगये ध्यानावस्था के आँगन में। यह मन की गति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं और ऐसी ही न आये—जब मन प्रभु का कहीं अनुभव करने वाला होगा, परमात्मा का अनुभव करेगा, भोक्ता बनेगा और परमात्मा विषय बनेगा उसके अनुभव का। अनुभव की क्रिया रहेगी। यह त्रिपुटी प्रभु की रहेगी वहाँ पर।

क्या परमात्मा हमसे ऐसे नितान्त भिन्न हैं कि उनका विषय-रूप में अनुभव किया जायेगा ? केन्द्र में कोई भोक्ता है, कोई योग्य विषय है ? उपभोग नाम की या अनुभूति नाम की घटना यदि कोई घटी, तो यह परमात्मा के लिए क्या सम्भव है ? यह मैं मानती हूँ कि "एते नाम ते कविविषयाः बुद्धेः" ब्रह्म-सूत्र में यह कहा, लेकिन मन की गतियों का असंगत होना ध्यान के मार्ग में, जब हम समझ जाते हैं, तो मन की गति के प्रति, जिसका बोध हो गया होता है, हमारा मोह क्षीण हो जाता है। भाग्यशाली हैं वे, जो तीव्र-संवेद्य हैं। उनमें इसकी कल्पना ही छूट जाती है, क्षीण हो जाती है। कहाँ छूट जाती है ? परमात्मा के साक्षात्कार के लिए, आत्मा की उपलब्धि के लिए। उसके मन की गतियों का मोह शान्त हो जाता है।

कैसी है मन की गति ? इसकी गतियों से मेरा कोई अब काम नहीं है। मैं अनुभव करुँगा, मैं साक्षात्कार करूँगा—परम पुरुष का, यह जो अहंकार था, वह मैं की मर्यादा—अंगभूत मर्यादा, "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा" इस प्रकार की प्रभावशाली दशा आती है। इसलिए अवचेतन, अचेतन के आश्रय को देखने के बाद एक मौनावस्था आती है। अब प्रारम्भ हुई मौन-दशा। कर्त्ता और भोक्ता में से पारकर हम द्रष्टाभाव, साक्षीभाव में आये थे। वहाँ से अब आये हैं मौन के प्रदेश में। देखा था हमने कि वे विचार संस्कार के थे, अनुभव के थे। वे अनादि नहीं थे, अनन्त नहीं थे, सावधि और सान्त थे। इसलिए यह उनका दीखना शान्त हुआ। दीखना शान्त होते ही द्रष्टा कायम होता है। इसलिए एक मौन का अथाह सागर बन जाता है। केन्द्र में है देखने वाला और स्वयं भी मेरे अनुभव का क्रम चला है। अब न कोई देखने वाला है, न तो कुछ दीखने के लिए शेष है। ऐसे एक भीतर के मन में या भीतर के शून्य में मनुष्य का प्रवेश हो जाता है। यही एक ऐसा प्रदेश है, जिसको 'आत्मा की अन्धकारपूर्ण निशा' कहा गया है। हो सकता है, आदमी को पहले पाँच मिनट के अनुभवों के द्वारा प्रकाश भी आकर दीखता रहा हो और सुनाई पड़ता रहा हो, अब मुझे कुछ भी नहीं हो रहा है। किन्तु जैसे-जैसे मन शान्त होने लगता है, होता चला जाता है, वैसे-वैसे ये अनुभूतियाँ भी शान्त होती हैं।

एक विश्रान्त ज्योति में से अवधानकर्ता, भोक्ता-द्रष्टाभाव से मुक्त, ज्योति रह जाती है। लेकिन यह मौन का जो प्रदेश है, वहाँ व्यक्ति-चेतना या जो मेरा व्यक्तिगत मन है, जो देह के साथ अन्यान्योचित संस्कारों के खूंटे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बँधा है, वह भी शान्त हुआ। मनुष्य प्रतिष्ठित हुआ। यही हुआ वह लोक, जहाँ अवलोकन का पलड़ा आया। अपना जो भला-बुरा स्वरूप उनको दीखता है, उसी से घबड़ाकर भागना चाहते हैं, वहाँ ठहरना नहीं चाहते हैं। इसलिए ध्यान तक आदमी नहीं पहुँच पाता है।

मौन के प्रदेश में न कुछ दीखता है, न कुछ अनुभव आता है। मेरे साथ क्या हो रहा है, उसको पता नहीं चलता है, क्योंकि वहाँ अहंकार के सम्पूर्ण विलय की घड़ी आ गई। उसके अहंकार के विलोपन की घड़ी है। अहंकार घटता चला आया है। अपना विशेषण पाता चला आ रहा है। शांति की क्रियाओं में, अब क्रियाओं को और करने का अभाव हो जाता है। यह विलय की घड़ी है। वहाँ वह घबड़ाता है और कहता है—भाग जाऊँ। रोता है कि कुछ नहीं रहा, कुछ नहीं दीख रहा है। मन स्थिर है। डर रहा है, तो आँसू भले बहें। घबड़ाकर रोये, तो रोने दें, लेकिन स्थान नहीं छोड़ें। 'देहं वा पातयेत् कार्यं वा साधयेत्'। ऐसा एक-एक मनुष्य है।

जिज्ञासा यदि सच्ची है, तो मनुष्य मौन को स्थिर रहने देता है। मौन नाम के आयाम में, जो स्थिर हो गये, वह कैसी सुन्दर अवस्था है ? विचारों का तनाव नहीं है। नाड़ी-तन्त्र पर भावनाओं का दबाव नहीं है। शरीर और मन में एक आखिरी अवस्था पैदा हो गई है, जहाँ तनाव और दबाव से मुक्त हो रहे हैं। लेकिन मौन में जो स्थिर हो गये हैं, उनके शरीर में संजीवनी-शक्तियों का प्रवाह संचालित होता है। जितना मनुष्य मृत्यु के अनुभव से हारा था, थका था, मार खाया था, उसके मन की काया पर भाँप रहे थे उसकी खरोंचे, जो चेतना पर थीं, वे सब कुछ धुल जाती हैं। मौन के सागर में प्रतिष्ठित होते ही एक अजीब बात आ जाती है व्यवहार में उतरने के लिए, कार्य करने के लिए, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

मौन के सागर में, संजीवनी शक्तियों की याद में यह पहली घटना साधक के जीवन में, जब वह मन में से ऊबता है, ध्यान के क्रम में आती है; वह स्पष्ट हो गई। दूसरी कोई घटना, यदि मन में उसके रहे, तो वह ध्यान में आती है। आधा घंटा, एक घंटा जो मौन में बैठ रहा है, शिक्षण ले रहा है, ध्यानावस्था घटित हो, इसलिए वह अपने को तैयार कर रहा है, लेकिन अनुभव के इस ओर देखने के बाद जब आता है, तो पाता है कि जितना उसका चित्त पहले उद्विग्न होता था, शोकाकुल होता था, उसमें जल्दी-जल्दी कमी हो रही है।

आजकल कहते हैं—व्याकुल हो गये हैं, क्षुब्ध हो गये हैं, मनोभाव नहीं है। पता नहीं कैसी-कैसी भाषायें चलती हैं। दो-दो, चार-चार साल के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बच्चे नहीं हुए कि मातायें कहती हैं कि आज बच्चे का मनोभाव (मूड) नहीं है पढ़ने का। रोज शीशा में भी 'मूड' बनाते देखा है। लेकिन चार साल और दो साल ध्यान किये जाने पर उसका दूसरा अनुभव यह होता है कि व्यवहार में एक प्रकार से चित्त का संतुलन आता है और ज्ञानेन्द्रियों में भी संतुलन बढ़ने लगता है। मैं इसलिए बतला रही हूँ कि जैसे एक एक कदम रखते जाते हैं, वैसे सम्पूर्ण व्यक्तित्व में और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में परिवर्तन आता है, गुणात्मक परिवर्तन आता है।

जिस प्रकार के मनुष्य की आज हमें जरूरत है—भयमुक्त समाज बनाने के लिए, समता पर आधारित समाज बनने के लिए, संतुलित नागरिकों का जैसा समाज, संयमशील नागरिकों का जैसा समाज बनाना चाहते हैं, उसका यदि ध्यान-योग से सम्बन्ध नहीं होता, तो मैं कदापि मुँह खोलकर इन विषयों को ढूँढ़ती नहीं। मेरी पहली चिन्ता है, नव-मानव के जागरण की, जो मनुष्यमात्र बना सके। जिनका शरीर काबू में नहीं, मन संतुलित नहीं, व्यवहार संतुलित नहीं, पल भर के लिए चित्त स्वस्थ नहीं, वे शोषणमुक्त समाज बनायेंगे, वे राज्य का परिवर्तन करेंगे तथा सत्ता और सम्पत्ति को धारण करके उसका विनियोग कर पायेंगे, असम्भव लगता है। खैर, मौन से अनेक लाभ दिखायी देने लगते हैं। उसकी सबसे बड़ी एक बात आप से कहूँ कि इस मौन में व्यक्तिगत चित्त के सो जाने पर या अकर्मा अवस्था में जाने पर जो वैश्विक चेतना है, वह उसमें काम करने लगती है। यदि आपने अरविन्द का वाङ्मय देखा हो, तो वे इसे पदार्थ का ऊर्ध्वगामी बनना तथा दिव्यता का निकट आना कहते हैं।

मैं बात कर रही हूँ कि मन में जिसको चेतना, विचारणा, बुद्धि या परा-चेतना कहते हैं, जिसे विनोबा जी वैश्विक चेतना कहते हैं, वह काम करने लगती है। आपके और मेरे बीच बुद्धि के अलावा एक संवेदनशीलता, जिसका हमारी विरासत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, प्रकट हो जाती है। वह जीवन का धर्म है, जो प्रज्ञा जागृत होती है उस व्यक्ति में। वह आपके साक्षात्कार का प्रश्न होता है। वाणी खोलिए, तो उसका चिन्तन प्रस्तुत है। उसके अनुसार सम्बन्धों के व्यवहार के जरिये परिवर्तन उस व्यक्ति में होने लगता है। वह महान् केवल शून्य में, मौन में प्रतिष्ठित है।

आप कहेंगे—कैसे ? तो आपने मृदङ्ग देखे हैं, तबले देखे हैं ? भीतर क्या है ? कुछ नहीं है, शून्य है, एक खोखला है। हम कड़ा स्पर्श करते हैं, तो वह आवाज मधुर देता है। वैसे ही उस व्यक्ति के हाड़ माँस में से संसार के बोध ध्वनित होने लगते हैं। जिस जगह पर आवश्यक हो उसकी प्रतिभा और बुद्धि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका सहयोग करते हुए उसको अङ्गीभूत कर लेती है। लेकिन यह जो वैश्विक चेतना की गति है, उस मनुष्य में असाधारण आकर्षण पैदा करती है। साधना मन को डिगाने की दृष्टि है, जो उनकी वास्तविक भाषा थी, जो वास्तविक अर्थं में मुनि बन गये। इन मुनियों के जीवन में असाधारण आकर्षण पैदा होता रहा है। उनका आकर्षण असामान्य होने लगता है। उस व्यक्ति को व्यक्ति का डर नहीं रह जाता है। असामान्य काम उसके द्वारा होने लगते हैं। मन को आभास होता है कि ये मैंने किये हैं; यह मेरा विषय है; इसके लिए मेरा जन्म है: यह मुझे करना है। तो मौन तक पहुँचने का नहीं, तो फिर रुक जाता है, क्योंकि वैश्विक चेतना के कारण ही ये सब कार्य होते हैं।

*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवम :

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १—संसार-सागर की उत्ताल तरंगों के मध्य रहते हुए उनसे उत्तीर्ण कैसे हों ?

मछली जल में जन्म लेती है, जल में जीती है, जल ही पीती है और जल में ही उसका जीवनान्त है। बहुत बड़े सागर में है, लेकिन जल भी वही और जीवन के देह का अन्त भी वही। यह जो संसार-सागर है, वह चैतन्य-सागर है। संसार में ही जीवन है और संसार ही तो अनन्त प्रभु का सान्त विग्रह है। यह संसार और उसमें जितने पदार्थ हैं, वे प्रभु के नाम में समाहित अर्थ को प्रकट करने वाले माध्यम हैं। प्रभुसत्ता को प्रकट करने वाले ये माध्यम है पदार्थ। ये अवरोध नहीं हैं, प्रभु के और हमारे बीच। इनको अवरोध मानेंगे, तब तो हमारे लिए मुसीबत है, इनसे मुक्त होना, इनसे कभी रूठ के जाना नहीं। जीवन ही जीवन की विभुता और प्रभुता है, स्वरूप है। इसमें आज तक सर्वोत्तम सर्वोत्कृष्ट विग्रह मनुष्य है। इसीलिए हमेशा से हमारे सामने समस्या खड़ी होती है सम्बन्धों की। वह कैसे सम्बन्धों से मुक्त हो ? बँधना बाधक क्यों बनता है और मुक्तिदायक क्यों नहीं बन पाता, इसे हम सोचें। सम्बन्ध के बिना जीवन नहीं है। जब अकेले रहते हैं, तो वहाँ जीवन नहीं है। अस्तित्व तभी है, जब साथ हो जाते हैं और साथ हो जाने से जीवन व्यक्त होता है। जीवन सम्बन्धों में है, लेकिन ये सम्बन्ध हमें क्यों बाँधते हैं ? ये चित्त को शुद्ध क्यों नहीं बनाते ? ये चित्त में मलिनता क्यों पैदा करते हैं, क्यों बन्धन बाधक बनते हैं ? कर्म शुद्ध कारक क्यों नहीं बनता, मुक्तिदायक क्यों नहीं बनता ? इसको हम सोचेंगे, तो पता चलेगा कि इस ब्रह्म में जीने में कहीं हमारी भूल हो गई है। ये सम्बन्ध हमें बाँधते नहीं, ये सम्बन्ध सम्यक् मुक्तिदायक हैं। सत्य हैं। इससे बाहर जीवन है नहीं। इस जीवन से बाहर न कहीं प्रभु हैं, न कहीं परमात्मा हैं और न कहीं जीवन है। जीवन जो कुछ है, यहाँ है, वर्तमान में है। विद्यमान में और उसके साथ अनेक मोर्चों पर हमारा सम्बन्ध आता है। इन सम्बन्धों में से कुशल व्यक्ति, 'योगः कर्मसु कौशलम्' का आचरण करता है। इन सम्बन्धों में से हम सीखते चले जायँ, व्यक्तियों के महत्त्व में बँधें नहीं, हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदार्थों के महत्त्व-भाव से बँधें नहीं। आज आँखों से, कानों से पहचानने से यह अहम्-भाव उठता है, जो व्यक्तियों, पदार्थों तक पहुँचता है। उन विषयों से संवेदना उठती है—"अनुकूलसंवेदनं सुखम्, प्रतिकूलसंवेदनम् दुःखम्।" इस प्रकार की अनुभूतियों के ममत्व के पाश में बँधकर आता है। कोई युक्ति है, इस अहं-कार के केन्द्र से विषयों, पदार्थ और व्यक्तियों के अलगाव की। जैसे भ्रमर उड़ता रहता हे, पुष्पों की पंखुड़ियों से मधु ग्रहण कर लेता है। पंखुड़ियों की नजाकत को आँच नहीं आती। पुष्पों के रंग भी मलिन नहीं पड़ते हैं। पंखुड़ियाँ कायम रहती हैं, सौरभ में ह्रास नही है और मधु ग्रहण कर लिया है।

भारतीय संस्कृति कहती है कि योगशास्त्र के अनुसार जीवन जीने की एक कला है, एक विज्ञान है। इस तरह विषयों और सम्बन्धों में से गुजरते हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व की हानि नहीं होगी, न पदार्थों में अपनी उपभोगपरायणता और लम्पटता से हमें आँच आने पायेगी। सबका सम्मान करते हुए, सम्बन्धों में जीते हुए, मुक्तता का आनन्द लूटते हुए देख सकेंगे। यह ग्रन्थ की बात नहीं है। अपने एक नगर में छोटे से जीवन में इसको हमने देखा है, पाया है, जिया है। बस, जिया हुआ सत्य आपके पास रख दूं। सात वर्ष की आयु थी, पिताजी ने गीता पर हाथ रखवाया और कहा—देखो, अनुभूतिजन्य शब्द बोलना, दूसरा नहीं बोलना। संसार-सागर की चिन्ता मत करं, यह चिन्तन का सागर है। इससे मुक्त होकर आप कहाँ जायेंगे और सम्बन्धों से अलग हो करके जी कैसे पायेंगे? अस्तित्व में मजा लो। मित्रों, सम्बन्धों में जीवन है और जीवन का लक्ष्य जिन्दगी को जीना है। इसलिए इसे बन्धन में न मानें, आपत्ति रूप में न मानें, आपत्ति को अवश्य वरण कीजिए और बन्धन पैदा करने वाली परिस्थिति में से मुक्ति पैदा करने का पुरुषार्थ पैदा करें।

प्रश्न २—ज्ञान-विज्ञान तथा भगवान् के समन्वय पर प्रकाश डालें।

प्रश्न है, ज्ञान-विज्ञान और भगवान् के सम्बन्ध में। ज्ञान-विज्ञान के साथ हमारा सम्बन्ध सीधा जुड़ा है। सीधा ही संबंध जुड़ गया है, भगवान् के साथ। तीन वर्ष की मैं थी और सुनती कि भगवान् हैं, भगवान् हैं। एक दिन घर में बहुत सारे अतिथि आये थे, बड़ा परिवार जुटा हुआ था। किसी से मैं पूछ बैठी कि 'आप लोग कहा करते हो। भगवान् हैं, वे कहाँ हैं?' 'एक गहरे कुयें में रहते हैं। बच्चों का काम नहीं है, उनको देखना।' बस इतना सुनना था कि दौड़ पड़ी मैं आँगन में और सौ फीट गहरे कुएँ में गिर पड़ी। यह नहीं मालूम था कि कुएँ में पड़ने से, गिरने से, कुछ चोट आयेगी। किसी ने कहा—वे जल में हैं, वे कहीं कुएँ में रहते हैं। हमें ज्ञान, विद्या का पता आज तक चल नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाया। छोटी-सी आयु में प्रभु ने चित्त चुरा लिया। आँखें भी चुरा लीं और चित्त भी चुरा लिया। भगवान् एक सत्ता है। सत्ता में हैं—स्थिति और गति। आकाश जो आपको दीखता है, जिसको 'स्पेस' कहते हैं, उसमें नीलिमा है। भगवान् की सत्ता के स्वरूप का बोध कराने वाला वह हमारे लिए निकटतम विग्रह है। आकाश की नीलिमा में उस नीलवर्ण पीताम्बर-धारी के दर्शन हो सकते हैं—जैसे निराकार है, निर्गुण है और सबको धारण करता है। सूर्य का ताप सूर्य से मुक्त होता है, हम तक पहुँचता है, लेकिन आकाश तप्त नहीं होता। वर्षा बरसती है और भिगो देती है धरती को, आकाश भीगता नहीं। ऐसा भी कुछ भगवत्-सत्ता का स्वरूप है। इस शून्य में वह पूर्ण समाया हुआ है। इस निरालम्ब, निराकार आकाश में जीवन की सभी शक्तियाँ पूर्ण रूप से विराजमान हैं। अब इससे अधिक भगवान् का क्या वर्णन हो सकता है? भगवान् जो है, उसकी सत्ता है, जो समाया हुआ है। ज्ञान प्रभु का स्वभाव है, आत्मा का स्वभाव है, क्रिया नहीं है, बुद्धिजन्य क्रिया नहीं है, अहंजन्य क्रिया नहीं है, गर्व नहीं है। शब्द के सेतु से होकरके यदि हम गुजरें, तो अर्थ और भाव की मदद से भगवान् तक पहुँचने का मार्ग पा सकते हैं। ज्ञान प्रभु की क्रिया का जो अन्तिम तत्त्व है, उनमें से एक है। यह जो गति है आत्मा, स्पष्ट है। ब्रह्मांड में शक्तियों का बोलबाला है, इन शक्तियों का उपभोग करने में, उपयोग करने में एक बड़ा रोमांचकारी साहस है। उस साहस—कौतूहल में आज मनुष्य-जाति पड़ी है। इसलिए सत्ता की तरफ उतना ध्यान नहीं है, जितना शक्ति की तरफ है। इन शक्तियों की खोज में से, अन्वेषण में से विज्ञान आया है। ज्ञान और विज्ञान में जो गति रूप है, महामाया, माहेश्वरी, महाशारदा, महालक्ष्मी, महासरस्वती, महाकाली ये जो रूप हैं, जो शिव के साथ सदा रहने वाली शक्ति है, जो मानव के साथ विराजने वाली है, जो चैतन्य की धारा में शक्तिरूपिणी ऊर्जा है, उनकी खोज या अन्वेषण विज्ञान है। विज्ञान को हमारे यहाँ शोधात्मक ज्ञान कहा जाता है। 'ज्ञान' शब्द का पारिभाषिक अर्थ अध्यात्म है, आत्मज्ञान है, अन्य ज्ञान नहीं। विषयज्ञान को विशिष्ट ज्ञान कहा गया है और युक्ति-ज्ञान पारमार्थिक अर्थ में अज्ञान ही है।

प्रश्न ३—एयर-कन्डीशन्ड डिब्बे में रिजर्व टिकट रखते हुए भी आपको स्थान नहीं मिला। इस भ्रष्टाचार के विरोध में आप-द्वारा क्या प्रतिवाद किया गया? यदि नहीं, तो आप ऐसी विदुषी द्वारा भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज न उठा पाने से हम जैसे लोगों की क्या स्थिति होगी?

आत्मश्लाघा से बचना कठिन है, वक्ता के लिए। जिह्वा के दोष हैं, वक्ता को बचना है। लेकिन भ्रष्टाचार और अन्याय के प्रतिकार में, इस देश में कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, तो बीस-पच्चीस वर्षों से, अपने ढंग से कार्य कर रही हूं, जो मेरे लिए कार्य नहीं, साधना है। हम एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं, नेता नहीं। मेरे पास कोई संगठन नहीं और सर्वसेवासंघ या संयोजक संस्था कभी समस्या नहीं बनी। एक प्रभु की व्यक्ति हूं और अध्यात्मनिष्ठ व्यक्ति के नाते, नागरिक होने के नाते, जितना प्रतिकार कर सकती हूं भ्रष्टाचार का, अन्याय का, आपत्ति का, उतना सब करती हूं। एक ही प्रकरण का मैं उल्लेख आपको सुनाती हुं। पोरबन्दर शहर गुजरात में है। सुदूर पश्चिम में महात्मागाँधी की जन्म-भूमि है। वहाँ से पत्र आया दो-तीन अपरिचित भाइयों का - इस एक लाख की बस्ती के शहर में कुछ वर्ष पहले तीस से पैंतीस खून हुए। यहाँ कोई घर से बाहर नहीं निकल सकता है। बड़ा आतंक है। इसमें राजनीतिक पक्ष उलझे हुए हैं। प्रशासक और अधिकारी भी उलझे हुए हैं। समझ में नहीं आता क्या करें ? आप आइये।' भक्त का धर्म है कि अपनी योग्यता, अयोग्यता दोनों का विचार करे। प्रभु का नाम लिया कि प्रभु, आप बुला रहे हैं, गाँधी जी की जन्मभूमि है और निकल पड़ी। एक व्यक्ति के नाते जीते-जी जितना हो, वह करूँ। बड़ा उलझा हुआ मामला था। बड़ा पेचीदा मामला था। गुण्डों की टोलियाँ बनाकर एक पक्ष की एक टोली, दूसरे पक्ष की दूसरी टोली लड़ रही थी। १८ साल से ३० साल के बी० ए०, एम्० ए०, एम्० एस्-सी०, पी-एच्० डी० इन लोगों को वेतन दे दे करके उद्योगपतियों ने, व्यापारियों ने, राजनीतिक नेताओं ने और पुलिस-अधिकारियों ने तैनात कर रखा था। एक खून करने के लिए कितने हजार मिलेंगे, यह तय था। ऐसे वातावरण में हम कूद पड़े और फिर गुजरात के सब साथी उतर आये। पचहत्तर भाई-बहनों ने पोरबन्दर शहर में पद-यात्रा की। एक-एक गाँव छान डाले। जिनको लोग गुण्डे कहते हैं, उनसे मैं मिली, जो रिवाल्वर लिए एक साथ बैठे थे, बातें करते थे, मध्य रात्रि में किसी के सामने। आज ६ वर्ष के बाद पोरबन्दर शहर में सामान्य नागरिक तो क्या १० साल की बच्ची को भी कोई भय नहीं रहा है। अन्याय के प्रतिकार में राजनैतिक पक्षों से लेकर शासकीय अधिकारियों तक सम्बन्ध आया। उनका रास्ता था डर का, संघर्ष का और हमारा रास्ता सहयोग का था। उन्हें डर था बेइज्जत होने का और हम चाहते थे मानव की और मानवता की प्रतिष्ठा फिर से करना। इसलिए उनका डर, उनका अविश्वास, उनका भय धीरे-धीरे दूर होता गया। वातावरण बदलता गया।

मेरे मित्रों ! एक व्यक्ति इस प्रकार यदि उलझ पड़ता है, वह भी बहन होने के बावजूद, तो सोचें, मुझे वहाँ जाने देने के लिए कोई तैयार नहीं था, कहते थे आप मत जाइये, वहाँ बन्दूकें और रिवाल्वर चलते हैं। वहाँ बहनों को लेकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत जाइये। मैंने कहा कि देश के पुरुषों में अब पौरुष नहीं बचा है, तो हम बहनों को निकले बिना कोई रास्ता है क्या? और मरना होगा, तो एक दिन मरना ही है, बहनें तो पहले मरेंगी, माताएँ पहले मरेंगी। पुत्र, पिता, पति, भाई जो होंगे, शायद वे हमारी मृत्यु की राह देखते होंगे। लेकिन पोरबन्दर में वह बड़े मेल-मिलाप से हुआ है। पहले अविश्वास, पहले भय, हमारा विरोध करने के प्रयत्न, हमारे रास्ते रोकने के प्रयत्न हुए। सबको बेइज्जत होने का भय था। मैंने कहा—आप सब मिलकर मेरी भारतमाता को बेइज्जत करते हो। इसकी चिन्ता नहीं है और अपने बेइज्जत होने का डर नहीं। जो गुण्डा-गर्दी करने वाले लोग थे, उनमें, वहाँ के वातावरण में परिवर्तन आया। मित्रों! महात्मा गाँधी की कृपा से ऐसा हुआ। भ्रष्टाचार का प्रतिकार करने का एक रास्ता है कि हमारे जीवन में भ्रष्टाचार न आये। अपने जीवन में हम नैतिक मूल्यों को सम्भालते रहें। मूल्यों को जिलाने के लिए प्रयोग और मूल्यों को जिलाते समय यदि मृत्यु आये, तो मृत्यु का भी वरण करें।

प्रश्न ४—सत्य क्या है? लोक-जीवन में सत्य का क्या स्वरूप होना चाहिए?

प्रश्न ५—ब्रह्म क्या है? व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्म के चिन्तन की सरस प्रणाली क्या हो सकती है?

प्रश्न ६—जीवन शून्य है, तो जियें क्यों?

प्रश्न ७—आत्मज्ञान ही सत्य है। इस स्थिति में आत्मा को सरलतया कैसे जाना जा सकता है?

प्रश्न ८—मन ही बन्धन है, तो मुक्ति का उपाय क्या है? इस सूक्ष्म मन को नियन्त्रित करना आसान नहीं है। अतः इसे नियन्त्रित करने के लिए अध्यात्म और वैराग्य के अतिरिक्त सरल उपाय क्या हैं?

प्रश्न ९—मुट्ठी भर मानव की मुट्ठी में सभी क्यों आएँ?

प्रश्न १०—भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद में क्या समन्वय है?

यह शून्य ही पूर्ण है और इस शून्य में छिपी हुई जो शक्तियाँ हैं, इनकी खोज करना, भीतर की और बाहर की, उन शक्तियों का सम्यक् विनियोग करने का जो रहस्य है, उसे उपलब्ध्र कराने की क्षमता मानवीय जीवन का पुरुषार्थ है। इसलिए शून्य में छिपे हुए पूर्ण को अपने देह-द्वारा और अपने सम्बन्धों-द्वारा प्रकट करें। इस प्रकार की आकांक्षा का वरण करें। शून्य है, इसलिए जी सकते हैं। आज जो हमारी और आप की मुसीबत है, उस ऐटम की व्याख्या करने वाले हैं। आधुनिकतम पदार्थ–विज्ञान के जो ज्ञाता हैं, वे मानते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं कि हमने ऐटम को तोड़ करके, एलेक्ट्रान देखे, न्यूट्रान्स तक गये। लेकिन हम देखते हैं कि अन्दर शून्य में शून्य भरा है और हम यह मानते थे कि एक ऐटम, एक अंश दूसरे अंश के पोषक हैं। पदार्थविज्ञानवेत्ताओं के साथ बैठने का मौका साल दो साल में हमें अमेरिका में आ ही जाता है, स्विटजरलॅण्ड, इङ्गलैण्ड में आता है। उनकी जो भौतिक विभाग की परिषदें हैं, उनके विशेषज्ञ दो-तीन दिन बैठते हैं, क्योंकि अध्यात्म में फीजिक्स और मॅथेमेटिक्स आ जाते हैं। अध्यात्म, गणित और पदार्थविज्ञान, एक दूसरे के अति निकट हैं। यह शून्य जो है, वह बाहर भी है, भीतर भी है; अङ्ग-अङ्ग में है। उसके साथ सम्बन्धित होना और शक्ति को प्रकट करना मानव का धर्म है, मानव की जिम्मेदारी है। इसलिए जीना है—'अनुपाय एव उपायः'। 'अनुपाय' नाम का उपाय है और ये मेरे शब्द नहीं हैं, जिन्होंने गोरक्षसंहिता देखी है, जिन्होंने तन्त्रशास्त्र का पूरा अभ्यास किया है, वे रसिक-वर्ग जानेंगे कि अनुपाय एक उपाय है। यह नाथपंथ या अवधूत सम्प्रदाय का एक सूत्र है। ज्ञानेश्वर महाराज हमारे नाथ-पंथ में दीक्षित हुए। ज्ञानेश्वर के गुरु निवृत्तिनाथ, उनके गुरु गहरी नाथ। इस प्रकार परम्परा चली जाती है, गोरक्षनाथ तक। वैष्णवधर्म में एक अजीब धर्म है, जिसका अधिष्ठान नाथ-पंथ में है। कुछ अजीबो गरीब स्थिति महाराष्ट्र में वैष्णव धर्म की है। उन लोगों की अजीब स्थिति हो जाती है। अनुपाय एक उपाय इसलिए कहा कि मन के द्वारा, मन के केन्द्र में यह जो अहं नाम का केन्द्र हमने बनाया, जिसको मानवीय संस्कृति ने पैदा किया, विज्ञान का मनोविज्ञान है। यह जो केन्द्र है, यह एक हमारा जरिया है। एक दूसरे के साथ जीने के लिए, हमने अनेक कल्पनाएँ बनाईं और उन कल्पनाओं के प्रतीक बनाए, तो अब हमें कल्पना करनी पड़ी। घर में बच्चे का जन्म हुआ, नाम देना पड़ा। उस छोटे से बच्चे के अन्दर जो जीवन स्पंदित हो रहा है, उसका आप नाम क्या दें? आप के घर में, दरवाजे में से प्रकाश आया। लेकिन उसका नाम आप क्या देंगे, दे नहीं पाते। हवा आप की है, हवा को क्या नाम देंगे, दे नहीं पाते। लेकिन यहाँ तो जीवन आया है, चैतन्य आया है, वह एक छोटे से, लम्बे से देह में, उसके बन्धन में बन्द होना या उसमें मर्यादित होना, यह स्वीकार करके चला आया चैतन्य और हमको मुश्किल में डाल दिया, तो नाम दिया उसको राम, हरीश, सीता, रजनीश, कला, संस्था कुछ न कुछ नाम देना पड़ता हैं, क्योंकि एक देह को दूसरे देह से पृथक् करके देखना है, बुलाना और उसके साथ व्यवहार करना है। ये हैं नाम और छोटे-से नन्हें-से शिशु की देह है। एक गोरी है, एक काली है, एक गोरा उजला है। यह काला है, यह साँवला है। देह का वर्ण है, काला, साँवला और जीवन का? आत्मा तो कभी-काली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होती रही है। जिस प्रकार हवा का रङ्ग नहीं है, जिस प्रकार आकाश के रङ्ग नहीं हैं, वैसे आत्मा के भीतर भी जीवन है। उसके रङ्ग तो कोई है ही नहीं, लेकिन हमने कहा कि अरे बच्चे तू पागल हो, तू साँवले हो……… एक शर्त हमने पैदा कर दी। पहले जिसको हम सिखाते हैं, हम हरि कहकर पुकारेंगे, तुम हाँ कहो, जी हाँ कहो, तो बच्चा बेचारा सीखता है, मैं हरि हूं, मैं राम हूं, मैं गोविन्द हूं, जो भी उपनाम देते होंगे। नाम के साथ पदार्थ का सम्बन्ध है। आत्मा का संकोच ही अहङ्कार का स्वरूप है। सङ्कोच किया पदार्थ के नाम के साथ, फिर पदार्थ का देह के साथ, देह के गुणों के साथ, उसकी बुद्धि है, मस्तिष्क है। ये मन्दबुद्धि हैं, ये डल हैं, ये ब्रिलिएण्ट हैं, ये स्मार्ट हैं। उसको जो सिखाते चले जा रहे हैं, तादात्म्यताओं के तह के साथ तह रखते चले जा रहे हैं।

परिवार में, विद्यालयों में, समाज में, साहित्य के द्वारा वह बेचारा सचमुच मानने लगता है कि एक विशिष्ट देहमय, निर्गुणमय, दोषमय हूं। इस प्रकार यह अहङ्कार जो है, इसके द्वारा कहना पड़ता है। मन चलता है, तो इस अहम् नाम के केन्द्र से चलता है। हम स्विच दबाते हैं, तो प्रकाश हो जाता है। इस प्रकार यह अहम् नाम का जो केन्द्र है, उससे प्रतिक्रियायें होती हैं। विषयों से सम्बन्धित होती हैं, संवेदनाओं से उठती हैं। संवेदनों का अर्थ न तो बुद्धि करती है और न तो अर्थ-वचन के साथ इसकी प्रतिक्रिया मन करता है। इस बुद्धि या इस मन से आप मन की चञ्चलता को, दोषों को, कमजोरियों को कैसे काबू में रखेंगे? उसको एक ढाँचा तो देंगे, व्रतों का, प्रतिज्ञाओं का। एक तरफ आप उसको दबायेंगे तो दूसरी तरफ उसकी चञ्चलता फूट पड़ेगी। इसलिए दमन से, निग्रह से काम नहीं चलेगा। इसलिए हम क्या करें कि मन की समस्त गति जानें? पारिभाषिक अर्थ से प्रभु की खोज के लिए या आत्मा की खोज के लिए मन की गतियाँ जो हैं, वे अनुकूल नहीं हैं, संगत नहीं हैं। इतना समझकर भी मन की गतियाँ सुस्त हैं, शान्त हो गयी हैं। मन के भवन में द्वार खुलते हैं। आप लोग सुन चुके, इसलिए मैंने कहा कि अनुपाय एक उपाय था। मन के लिए कुछ होने वाला नहीं। इस मन से न प्रभु की प्राप्ति होगी, न आत्मबुद्धि होगी, मन जहाँ समर्पित हो जाता है। मेरी गतियों से पदार्थ की सृष्टि का काम होता है और शब्दसृष्टि तक मन पहुँचता है। व्यक्त, अव्यक्त तक उसकी पहुँच है। अनन्त के सामने गतियों को शरणागत करना, सब गतियों को समेट लेना, आत्माहुति चढ़ा देना, यही आत्मोपलब्धि, यही प्रभुसाक्षात्कार का एक रामबाण उपाय दिखाई देता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सभा में ब्राह्मण-कुल में जन्म लिए हुए जितने व्यक्ति बैठे होंगे, वे मुझे क्षमा करेंगे। मैंने तो कभी सुना था कि संस्कृत-भाषा केवल ब्राह्मणों के लिए है और आज ब्राह्मण कहाँ रह गये हैं, यह भी तो मुझे पता नहीं है। गम्भीरता से सुनियेगा, मैं उपहास करने के हेतु से नहीं कह रही हूँ। लेकिन सारे हिन्दुस्तान भर में यदि हाथ में दिन में मशाल लेकर ढूढूं, तो मुझे कोई हिन्दू देखने को नहीं मिलेगा। यह जब आज भारत की परिस्थिति है, तब ब्राह्मण कहाँ से देखने को मिलेगा, मित्रो! जिसको संस्कृत-भाषा का अध्ययन करना है? मैंने एक बुर्जुग का उल्लेख किया था, जो मुसलमान थे। वे संस्कृत पढ़ने के लिए गये और उनके गाँव में कुछ एक सज्जन मिले, जिन्होंने संस्कृत-भाषा उनको पढ़ा दी, जिनको यवन कहा जाता है। बाकी सवाल क्या है? देखिए, संस्कृत-भाषा एक मौलिक भाषा है। इसे भूलकर भी यदि भारत के सभी नागरिक सीखेंगे, परिवारों में, विद्यालयों में, उस भाषा की गोष्ठी होगी या उपयोग होगा तो बड़ा श्रेय है, बड़ा कल्याण होगा देश का। यह हम सबकी, मनुष्य-मात्र की दिव्य भाषा है। देवभाषा यानी देव नाम की योनि में कोई रहते हैं और भगवान् ने उनको प्रकट की है या उनकी ही उस पर माल-कियत है, ऐसा मैं नहीं जानती हूँ।

मैंने संकेत किया कि संस्कृत-भाषा दिव्य भाषा इसलिए है कि फोनेटिक्स, सेमांटिक्स की दृष्टि से, भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इतनी निर्दोष भाषा संसार की भाषाओं में है नहीं, ऐसा भाषाविदों का कहना है। मेरा कोई बहुत अधिक भाषाओं से परिचय है, नहीं। होगा तो दस-पन्द्रह भाषाओं से होगा। लेकिन विनोबा जी पच्चीस भाषाओं के ज्ञाता हैं और कुछ परिचित व्यक्ति हैं, गण-मान्य व्यक्ति हैं, फ्रांस में, जर्मनी में, इंग्लैण्ड में और अमेरिका में, जो ज्ञाता हैं, अनेक भाषाओं के। उन लोगों का कहना है कि लैटिन या ग्रीक भाषा से भी सनातन, पुरानी और शक्तिशाली भाषा जो है, वह संस्कृत-भाषा है। यह भाषा ही उस ढंग से बनी है कि जो बोलता है, वह यदि शुद्ध उच्चारण करे, तो उसके भीतर के नाड़ीतन्त्र का शुद्धीकरण केवल उच्चारण से हो जाता है। इस प्रकार से यदि उच्चारण करें, ह्रस्व, दीर्घ, अनुनासिक यदि शुद्ध उच्चारण करें, तो उस उच्चारण से, जो आस-पास की हवा है, उस हवा का शुद्धीकरण हो सकता है। यह तो भाषाशास्त्र का विषय है। फोनेटिक्स, सिन्टैक्स, सेमांटिक्स तीन चीजों को मिलाकर भाषाशास्त्र बनता है। हमें शब्दों की व्युत्पत्ति देखनी है, धातुतत्त्व देखना है। शब्द के तो बारह प्रकार के अर्थ होते हैं, केवल परम्परा-गत नहीं हैं, शब्दकोशों में बंधे खूंटे में अटके हुए नहीं हैं। उनके तो अनन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ हैं। जो संस्कृत-भाषा के शब्द हैं, उनके वैज्ञानिक भाषा में होने के कारण उनके उच्चारणमात्र से अनेक काम हो सकते हैं।

पश्चिमी जर्मनी में बने हुए चिकित्सालयों में प्रयोग चल रहे हैं, जिनको हम साउण्डथिरेपी कहते हैं। नाद के द्वारा शारीरिक और मानसिक व्याधियों की चिकित्सा वहाँ की जाती है। दक्षिणी जर्मनी में, नीदरलैण्ड में, हालैण्ड में और स्विटजरलैण्ड में अन्य भी प्रयोग होते होंगे, लेकिन मुझे विदित नहीं हैं, जितने विदित हैं, उनका मैं उल्लेख कर रही हूं। वहाँ सबों ने देख लिया कि अनेकानेक व्याधियों में से बहुसंख्यक व्याधियाँ ऐसी हैं, जिनके लिए एअर-टाइट कमरा प्रदान करके ताँबे के पत्र लगा देते हैं। उसमें रखते हैं मरीजों को। उसके पास यदि अत्यन्त धीमें स्वर में, अत्यन्त मृदु स्वर में प्रणव का उच्चारण होता है, तो उसके नाड़ीतन्त्र में नवीन धातुगत जो व्याधियाँ होंगी, उनको शीघ्रता से दूर किया जा सकता है, उनका निराकरण हो सकता है। प्रयोग तो एक शर्त है। संस्कृत-भाषा पर किसी एक जाति का, किसी एक धर्म का अधिकार नहीं है। हिन्दुस्तान के लोग हाथ मलते रह जायेंगे। आज अमेरिका में संस्कृत-भाषा का अध्ययन हो रहा है और हमेशा से हो रहा है और उस भाषा का दोहन हो रहा है। उस भाषा के दोहन में से मिलने वाला जो अर्थ का अमृत तत्त्व है, वैज्ञानिक सत्यों का और तथ्यों का, वह उनको मिल रहा है। उनके आधार पर अन्वेषण और खोजकार्य चल रहे हैं। इसलिए जिन युवकों को, युवतियों को, छात्राओं को, छात्रों को, कोई यह कहता होगा कि संस्कृत-भाषा केवल ब्राह्मणों के लिए है, मैं उनको अज्ञानी कहती हूं। उनको भ्रम में रख रहे हैं। यह देववाणी, दिव्यवाणी सबके लिए है। मनुष्य देहधारी नहीं है और आप इसको प्रतिकार मानेंगे। लेकिन जिनसे मैंने जीवन में सबसे अधिक प्रेरणा पायी, वे हैं सन्त ज्ञानेश्वर। सन्त ज्ञानेश्वर के जीवन में घटना है कि आठ वर्ष के हो गये थे, संन्यासी की सन्तान थे, इसलिए उनको यज्ञोपवीत देने के लिए कोई तैयार नहीं था। वे चले जाते हैं, पण्डितों के पास और कहते हैं कि मेरा नाम ज्ञानदेव है। वहाँ उनसे भैंसे को दिखाकर कहा गया कि—यहाँ भैंसा है, उसका भी तो नाम है ज्ञानेश्वर।

जीवन की एकता की बात करना है, तो ज्ञानेश्वर बड़ी नम्रता से कहते हैं कि हाँ गुरुदेव! आप का आदेश होगा, तो इसके मुख में से भी वेदमन्त्र निकलेंगे। लोग कहते हैं—आजकल के आधुनिक लोग उसको दन्तकथा मानेंगे—मेरे लिए भारत की मिट्टी के कण-कण में कथायें इतिहास हैं, तो हाथ रखा उन्होंने, भैंसे के मुख से दो वेदमन्त्र निकले। वेद में प्रथम उस मन्त्र को बोला गया तो वेदों का अधिकार है। हमारे ज्ञानेश्वर महाराज ने तो भैंसे तक पहुँचा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया, आप और हम तो मनुष्य हैं। परमात्मा जो था, जो कुछ था, ईश्वर परमेश्वर या परमात्मा कहने से जिसकी एक विशिष्ट आकार में, नाम में, रूप में, आत्मा में या पंच महाभूतों में प्रकटित आधिकारिक भावना से पहले था अव्यक्त। उसमें जब अनन्त छिपा हुआ है, तब जो कुछ था, उसको हम शब्दों की रेखा में बाँध नहीं सकते थे कि वह सत् नहीं था, केवल सत् ही था और असत् नहीं था। यह क्यों कहा कि ये सत् और असत् जाने ? शब्दों में बाँध करके या इशारों से संकेत करके उस असत् को अपने में बाँध रखने वाला मर्यादित शब्द उसको कहें, ऐसा नहीं। वहाँ मृत्यु जिसको कह सकेंगे, विनाश की कल्पना में जिस मृत्यु की धारणा बँधी थी, वह मृत्यु भी नहीं था, इसलिए अमृत तत्त्व था ऐसा भी इस समय कहा नहीं जा सकता। इन संज्ञाओं में जीवन की अपरिमिति को बाँटा नहीं गया था। प्रकाश न बिखरे तो रात्रि कहें, यामिनी कहें, निशा कहें और प्रकाश बिखरे तो दिन कहें, दिवस कहें, ये जो हैं विभाजन, यह हमें चेतना ही नहीं थी। इसलिए न रात्रि थी, न मृत्यु थी, न अमृत था। यह जीवन एक संश्लिष्ट एकता है, सघन एकता है। अव्यक्त के परदे के पीछे अनन्त में कूद पड़ा है, तो यह नासदीय सूक्त बड़ा गम्भीर है। यह जब अव्यक्त में से आता है, तो मर्यादित होता है। अव्यक्त को मर्यादित होने का अर्थ ही व्यक्त होता है। पंच महाभूतों की मर्यादा स्वीकार करना ही उसकी कल्पना रखी गई है और मर्यादाओं से उस सत्ता में से कुछ घटता नहीं है। अव्यक्त, व्यक्त के रूप में जब प्रसाधित होकर सामने आता है, तो उसका कुछ ह्रास नहीं होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशम :

नारी : निराशा में आशा की किरण

बहनों और भाइयों, सोचा गया था कि एक कन्या और महिला-सभा हो। उसमें नारी-जीवन के विषय में कुछ संवाद और उनके साथ दो बातें हों। अभी जो सांस्कृतिक कार्यक्रम हम देखते रहे हैं और उससे चित्त पर जो प्रभाव हुये हैं, उनसे आप मुक्त हुये होंगे, ऐसा मैं समझती हूं। साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीन जीवन में कोई आनन्द नहीं होता। जन-शिक्षण के लिए सङ्गीत, कला, नृत्य एवं नाट्य रचनात्मक-शिक्षण की प्रक्रियायें हैं। विद्यालयों के औपचारिक पाठ्य-क्रमों से भी अधिक कभी-कभी ये प्रभावकारी होती हैं। मैं बधाई देती हूं उनको, जो संस्थान के सङ्गीत-विभाग, कला-विभाग के संयोजक हैं। उन्होंने छोटी-छोटी बालिकाओं को इस प्रकार के न केवल अभिनय प्रस्तुत करने में कुशल किया है, बल्कि उनको संस्कृत-भाषा का इतना शुद्ध उच्चारण दिया है। विषय के तद्रूप बनाकर, लोकभय छोड़कर काम करना उन्होंने इनको दिया है। मैं पहले उनको बधाई देती हूं। मेरी इच्छा थी, कन्याओं के सांस्कृतिक कार्यक्रमों को देखने की। संस्थान के जिन जिम्मेदार व्यक्तियों ने कष्ट उठाकर कार्यक्रम प्रस्तुत किया, उनको मैं हृदयपूर्वक धन्यवाद देना चाहती हूं।

अब हम चलते हैं उत्तर-प्रदेश के पूर्वाञ्चल में। उत्तर-प्रदेश का समूचा और विहार और मध्य प्रदेश के बहुत अधिक जिले, लगभग आधे जिले कहें, तो कोई असङ्गत नहीं होगा, नागरिक जीवन से जुड़े हैं। किन्तु यहाँ नागरिक जीवन पिछड़ा हुआ है। यहाँ न केवल सामाजिक क्षेत्र में, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी अन्य राज्यों की अपेक्षा कमी ही है। जब पूर्वाञ्चल के एक ग्रामीण भाग में इस प्रकार से कन्याओं को खेलते हुये मैंने देखा और सुना भी, तो बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ बैठी हुई जो छात्रायें हैं और उनके अभिभावक-वर्ग हैं, उनसे तथा उनके माता-पिता, साथ ही शिक्षक-वर्ग से मुझे जो मूल बात कहनी है, वह यह है कि कोई बहन कहे कि उसके यहाँ कन्या का जन्म हुआ, तो मानो आपदा पैदा हुई। बेटे का जन्म हुआ, तो मेवे बँटते हैं, मिठाइयाँ बँटती हैं और कन्या का जन्म होने पर दुःख होता है। माता-पिता की संस्कृति जब तक नहीं बदलती है, तब तक कन्या का जन्म होगा, तो विपत्ति मानी जायेगी, सङ्कट माना जायेगा। जब तक यह परिस्थिति नहीं बदलती हैं, तब तक स्त्रियों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नागरिकता का अधिकार देकर कुछ होने वाला नहीं है, क्योंकि बच्चियों को जन्म से यही सुनना होता है कि वह तो लड़की है। ऐसे दिमाग देश में हैं— लड़की को क्या अच्छा खाना देना है? उसके लिए क्या दूध, घी की जरूरत है? वह तो लड़कों को दिया जाय। देश के अन्य हिस्सों में तो यह बोध चलाया गया कि कन्या का जन्म हुआ तो अपराध है।

कन्याओं से मैं कहती हूं कि जो कन्यायें विद्यालय में पढ़ती हैं, यह भावना छोड़ दें कि हमारा जन्म हुआ, तो हम पुरुषों से कुछ कम ही योग्य हैं। हमारा जन्म हुआ, कुछ अपराध किये होंगे, पाप किये होंगे तो लड़की हुई, लड़की बनी हैं, यह जो अपने प्रति घृणा की भावना तथा अपने प्रति द्वन्द्व की भावना है, यह छोड़ देनी है। लड़की हो या लड़का, पुरुष हो या स्त्री, सब भगवान् की सन्तान हैं और सब समाज के नागरिक हैं। इनका अभी आपने अभिनय देखा। महात्मा गाँधी आधुनिक युग में एक स्त्री-उद्धारकर्ता के रूप में आये। उन्होंने स्त्री को अनेक प्रकार की मानसिक दासताओं से मुक्त किया। अतः अपने मन में संकल्प करें कि हम भी मनुष्य हैं। स्त्री-देह में होते हुये हम भी मनुष्य हैं, यह एक संकल्प करें। हममें यह शक्ति आयेगी कि हमारा जन्म होना अपराध या पाप नहीं माना जायेगा। हम किसी भी प्रकार पुरुषों से अपनी धारणाओं से अयोग्य नहीं हैं तथा अपात्र नहीं हैं। जीवन की जो पात्रता है, मैं मानती हूँ, स्त्री-पुरुषों के सहभागी बनने में आयेगी। स्त्री के नागरिक बनने से बल मिलेगा।

अब दूसरी चीज आप से यह कहनी है कि कन्या यह न मानें कि हमारे शरीर में बल नहीं है, हम तो अपना संरक्षण नहीं कर पायेंगी। हर स्त्री को अपना संरक्षण करने की शिक्षा पानी चाहिए। उसके शरीर में शक्ति हो, एक बात है, लेकिन शरीर से भी अधिक शक्ति होती है मन में और मन से भी अधिक शक्ति होती है आत्मा में। स्त्री निर्भय कैसे बनेगी? उसका डरना कैसे छूटेगा? जब वह समझेगी कि मैं आत्मा हूं और मेरे मन है, तन है, बुद्धि है, इनको मैं शिक्षण जरूर प्रदान करूँ। मेरा जन्म केवल देह को सजाने के लिए नहीं है। रूप-परायणता, देह-परायणता, व्यक्ति-परायणता ही स्त्री को सिखायी गयी है। स्त्री को केवल सजना है, गहने पहनना है, अच्छे अलंकार, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने हैं, सज-धजकर बैठना है। 'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने'। इस प्रकार से उसे जीना है। यह सब जो मान्यतायें हैं, उनसे पीड़ित जब तक मानस है, तब तक कोई माने नहीं निकलते। स्त्री को नागरिक बना दिया गया या उसे बिगाड़ दिया गया। अब हमें कहना चाहिए कि अच्छी तरह से शरीर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन और बुद्धि को प्रशिक्षण देंगे। हमारा शरीर केवल भोग्य वस्तु नहीं है तथा भोग्य विषय नहीं है। मेरी बहनों, छोटी-छोटी बहनों, आप मेरी भाषा यदि नहीं समझ पायें तो अपने शिक्षकों से पूछना।

स्त्री जिस दिन व्यक्ति-निष्ठता, रूपनिष्ठता, तथा देह-परायणता छोड़ेगी, उस दिन उसके लिए भय का कोई कारण नहीं रहेगा। जिस स्त्री के मन में अपने शरीर के प्रति वासनायें नहीं होती हैं, उसकी तरफ गलत नीयत से आँख उठाकर देखने वालों की संख्या बहुत ही कम होगी, शायद ही हो। स्त्री की निर्भयता का आधार उसकी आत्मा का बल है। यह आत्म का बल कहाँ से आयेगा ? सीधी-सादी बात है कि वह परमात्मा से, प्रभु से। उस पर श्रद्धा रखें, मेरे कहने से नहीं। इस देश में हजारों वर्षों से योगियों, महात्माओं, संन्यासियों, फकीरों, पीरों और पैगम्बरों ने अपने-अपने अनुभवों से कहा है कि परमात्मा है। वह सर्वत्र है। वह सर्वव्यापी है। पुकारने पर हाजिर हो जाता है। किसी न किसी रूप में वे चले आते हैं। उनका आधा नाम लेने पर भी, वे मदद करने के लिए दौड़ आते हैं। इस पर श्रद्धा रखना इस देश की बालिकायें सीखें। वैज्ञानिकों का भी यही शब्दार्थ है। इस देश के योगियों, सन्तों और ऋषियों ने अपने हाड़-मांस की प्रयोगशाला बनाकर, जो सत्य पाया है, वह सत्य ललकार कर कहता है कि इस संसार को बनाने वाला कोई अवश्य है। उसके समक्ष मनुष्य उन्मुख हो जाय, उसका स्मरण करे तो किसी न किसी रूप में वह मदद करने के लिए दौड़कर चला आता है। इसका भी मतलब यह है कि यदि हमारी श्रद्धा हो, तो हमें पता भी नहीं होगा और हमारी तरफ मुखातिब होकर दौड़कर चला आयेगा। कभी नहीं मानना कि हम अकेले हैं। १८ साल की उम्र थी मेरी। विश्वविद्यालय ने कहा कि अमेरिका चली जाओ। मैं विश्वविद्यालय का निमन्त्रण स्वीकार करने को राजी नहीं थी। मुझे डर लगा कि इतनी दूर अकेली मैं कैसे जाऊँगी ? मैं माँ के पास पहुँची और बोली कि माँ, मुझे लोग अमेरिका भेजना चाहते हैं। लेकिन मैं सोचती हूँ कि मैं अकेली कैसे जाऊँगी ? उन्होंने कहा कि किसने तुमसे कहा है कि तुम अकेली नहीं जा सकती हो। क्या ऐसा भी कोई स्थान है, जहाँ प्रभु नहीं हैं ? प्रभु हिन्दुस्तान में भी हैं और अमेरिका में भी हैं। अपने को कभी अकेले न समझना। उस निर्भयता की कुञ्जी प्रभु के प्रति हमारी श्रद्धा कहाँ है ? कैसे हैं ? हमें नहीं मालूम है, लेकिन जब इतने लोगों ने प्रयोग करके उन्हें स्वीकारा है, तो होंगे जरूर। वह शक्तिपुञ्ज हैं। इसे यदि पकड़ लीजिए तो आप निर्भय हो जायेंगी, डरेंगी नहीं।

तीसरी बात हमें यह कहनी है कि स्त्री के मन में, चित्त में लज्जा न हो। पुरुषों के साथ अपनी समता साबित करनी है, यह जरूर आपकी आकांक्षा हो,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेकिन उसके लिए हम पुरुषों की नकल करना न सीखें। इस प्रकार हमें पुरुष-वर्ग को कुछ देना है। हम समाज को दे सकती हैं। नारी के पास इस देश को कुछ देने के लिए अब शिक्षण आगा है। उसकी हमें बहुत खुशी है। लेकिन यदि उसका अर्थ हम केवल इतना ही समझें कि हम डाक्टर बनेंगी, इन्जीनियर बनेंगी, राजनीति में आयेंगी तथा वकील बन जायेंगी, तो समता सिद्ध हो जायेगी तो इसका तात्पर्य हुआ कि हमने केवल धन का लोभ तथा पदलोलुपता सीखी। वे ही हथकण्डे हमें हाथ में लगे, जो हमारे भाई अपनाते हैं। अतः एक से दो अनर्थ हो गये। एक अनर्थ कम था, उसमें हम जुट गये और अनर्थ को बढ़ा दिया। स्त्री धर्म है और वह पत्नी बनकर, माँ बनकर, बेटी बनकर, आचरण करती है। सारे परिवार को एक रखती है। सारा परिवार नारी के इर्द-गिर्द है, तो बहुत बड़ा स्थान है। यह न समझना कि नौकरी करने से या संसद में बैठने से, विधान-सभा में बैठने से कम महत्त्व का काम है। परिवार को सम्हालना एक अलग क्षेत्र होता है। अलग-अलग क्षेत्रों में समान निर्भयता और योग्यता से यदि व्यक्ति कार्य करे, तो यह नहीं पाया जा सकता कि लम्बी दौड़ दौड़कर संसद में बैठ जाना विशिष्ट है और घर में बैठने वाली गृहणी, जो रसोई बनाती है, सामान्य है। जिस अन्न से पिण्ड बनता है तथा सत्त्व बनता है, उसे वह सारे परिवार को देती है। इसका आर्थिक मूल्य कम हुआ और सांस्कृतिक मूल्य कम हुआ, यह भ्रान्ति आज देश में फैलने लगी है। अन्य देशों में भी है। हमें समाज के सभी क्षेत्रों में जाना है, लेकिन स्मरण रखना है कि परिवार हमेशा स्त्री के इर्द-गिर्द रहेगा। यदि इसे रखना है, तो इसके लिए स्त्री को स्थिरता चाहिए, इन मूल्यों की स्थिरता चाहिए, मानसिक स्थिरता चाहिए। तब हम जायेंगी नौकरी करने तो हम यह न कहेंगी कि पदोन्नति चाहिए। हम पुरुषों की खुशामद करें। कोई अन्याय करता है तो अन्याय करें। झूठ बोलना है तो झूठ बोलें। स्त्री भौतिक मूल्यों को अपने आँचल में मूल्यवान् करके वहाँ जाय। तरक्की मिले या न मिले, मैं अपने मूल्य नहीं छोड़ूंगी। मैं झूठी खुशामद नही करूँगी। मैं किसी के सामने नहीं झुकूंगी। घर में प्यार से और आत्मसमर्पण से हमने परिवार को जिलाया है, तो समाज को जिलाने का कार्य भी हमें अपने कन्धों पर लेना है।

इसलिए जहाँ हम जाँय, वहाँ प्रेम लेकर, याद की शक्ति लेकर जाँय। हम प्रतिष्ठा की पिपासा लेकर, धन की पिपासा लेकर न जाँय। लेकिन यदि हम मूल्यों की पिपासा को लेकर जायेंगी तो नारी के पास इस देश को ही नहीं, सारे संसार को देने के लिए बहुत कुछ होगा। नारी-जाति विधाता का बनाया हुआ एक छन्द है, एक कला है। उसे कहने का अभी समय नहीं है। एक रहस्य है, जिसको आज तक हम समझ नहीं पाये। अतुल शक्ति है, अपार शक्ति है एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारी में, जिसका भान करने के लिए एक चीज आपके सामने हमने रखी। समाज के सभी क्षेत्रों में जरूर जाँय, लेकिन असली पुरुष बनने के लिए नहीं, असली नारी बनकर योगदान देने के लिए।

अब चौथी बात हमें आपसे यह कहनी है कि लोग कहते हैं कि इस देश में बहुत भ्रष्टाचार है, कहीं भी नैतिक मूल्य नहीं रह गये हैं। अपने समाज का परिवर्तन सब लोग अपने नेताओं से, बड़े-बड़े सन्तों से, महात्माओं से चाहते हैं। सभीलोग चाहते हैं कि यह परिस्थिति बदल जाय। इस परिस्थिति को बदलने वाली क्रान्ति के केन्द्र में, मुझे लगता है कि परिवार है। वही भ्रष्टाचार रोकने का स्थल है। यदि कहीं रास्ता खुलता है और यदि भ्रष्टाचार रोकने की कोई युक्ति निकल आती है, तो वह है परिवार। एक तो परिवार प्रतिज्ञा करे उस बात की, जो बात हमने सुबह भी कही थी। हमारे घर में मुफ्तखोरी का सामान नहीं आयेगा, घूस का सामान नहीं आयेगा। यदि किसी के पिता, पति अथवा भाई को शासन से ५०० रुपये का वेतन मिलता है और वे १००० रुपये का सामान ले आते हैं, ट्राँजिस्टर ले आते है, टेपरिकार्डर ले आते हैं अथवा कहीं से कुछ ले आते हैं, तो हाथ पकड़ करके पूछना चाहिए। 'महाशय! यह कहाँ से ले आये? वेतन में तो इतना ही सामान मिलता है कि इस परिवार का खर्च नहीं चलता है, तो आप इतनी मँहगी वस्तु कहाँ से ले आये? इसका हिसाब दीजिए। अपने घर में अधर्म का, असत्य का, अन्याय का, झूठ का और रिश्वत का धन नहीं आने दूंगी।'

कम से कम शिक्षित बहनें यह तो रख लेवें। बहनों को अपने से अधिक राष्ट्र को महत्त्व देना चाहिए। अपने घर में हम रिश्वत की पूंजी नहीं आने देंगी जाति-पाँति को नहीं देखेंगी। जब बेटे की शादी करनी है—जाति-पाँति और छुआछूत हटानी है। देश में से यह हट जाय। कानून से हट जाय। परिवार को बचाने के लिए आपके उत्तर प्रदेश और बिहार में लोग लगे हुए हैं। पर वे चाहते नहीं है। वे चाहते हैं, व्यवस्था से अस्पृश्यता, जाति-पाँति हट जाय। पर जहाँ अपनी रोटी-बेटी का सवाल आया, वहाँ वह चीज छूटती नहीं है। मेरी बहनों, बालिकाओं! अब यह क्रान्ति का झण्डा तुमको उठाना पड़ेगा। जहाँ जाति-पाँति, ऊँच-नीच की भावना होती है और दहेज जो माँगता है, उससे मेरी शादी नहीं होगी। मुझको मालूम नहीं है कि मेरी बात लड़कियाँ पकड़ भी पायेंगी या नहीं। लेकिन जो बड़ी लड़कियाँ और अध्यापिकाएँ होंगी, उनको यह एक क्रान्ति का सन्देश अपने घर में, कक्षाओं में तथा अपने सम्पर्क में आने वालों को जरूर देना चाहिए। लड़की बी० ए० पास होती है और उसके पिता को, माता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को रोना पड़ता है कि दहेज नहीं दे सकते हैं, इसलिये शादी नहीं हो सकती। लड़की को गहना चाहिये। आपको कहना चाहिए कि जो दहेज माँगता है, उससे मेरी शादी नहीं होगी। मैंने आपसे कहा था कि एक विद्रोही बहन को आपने यहाँ बिठा दिया है। ऐसा यदि संकल्प होता तो जाति-पाँति का भेदभाव निकल सकता है। यदि यह भेदभाव परिवार से हट जाय, तो देश से हट सकता है।

बहुत बड़े-बड़े काम बहनें कर सकती हैं। सारा का सारा दर्शन आप के पास है। उसे रखने के लिए मैं यहाँ बैठी नहीं हूं। मैं देख रही हूं कि इस देश में नारी राष्ट्र-शक्ति को जगाने के लिए कूद पड़ेगी, बहनें कूद पड़ेंगी। जहाँ अशान्ति होती है, दंगे होते हैं तथा फसाद होते हैं, मातायें वहाँ मिल-जुलकर मुहल्ले में अपनी-अपनी शांति-सेनायें तथा सुरक्षा-समितियाँ बनाकर निकल पड़ेंगी। बहुत बड़ा काम हो सकता है। एक बहुत छोटी-सी घटना आपको बता दूं। पिछली जनवरी में मैं आसाम गयी थी। आसाम में युवकों ने एक आन्दोलन छेड़ा है। उस आन्दोलन का अध्ययन करने मैं वहाँ गई। वहाँ के युवकों में बहनें सबसे आगे रहीं। वृद्ध मातायें कहती थीं कि यदि गोली चलती है, तो पहले हम पर चले। अन्त मे भाई रहते थे। उनके पास होता क्या था? जुलूस में उनके पास, जिसे आप मजीरा कहते हैं, होता था। बजाने के लिए और भजन करने के लिए ढोलक रहते थे। हरिबोल, हरिबोल की धुन लगाती बहनें निकलती थी। कहीं कोई यदि लाठी चार्ज हो तो नीचे बैठ जाओ, हरिबोल-हरिबोल करते। मजीरे छीन लिए गए; लेकिन बहनें वहाँ गाती हुई बैठ जातीं। वैसे ही एक बार की बात है: एक १८ वर्ष का लड़का मारा गया। महिलाओं की सभा थी। जब हमको मालूम हुआ, तो उनको सान्त्वना देने के लिए मैं उस माँ के पास पहुँची। उसके कंधे पर हाथ रखा, कुछ बोल नहीं पा रही थी। लेकिन उन्होंने जब हमारी तरफ देखा तो समझ गयीं कि मेरा गला भर गया है, बोल नहीं पा रही हूं। वह हमसे कहने लगीं कि आप चिन्ता न करें। मेरे दो बेटे और हैं और वे देश के कार्य के लिए जा सकते हैं। यह माताओं का साहस और यह माताओं की हिम्मत है।

भ्रष्टाचार, अशांति और गुण्डागर्दी रोकने की सफलता किसी भी वर्ग को नहीं मिल रही है। यदि मातृशक्ति जाग उठती है, तो काम हो सकेगा, ऐसी मेरी श्रद्धा है। मुझे तो आप सबको बधाई देनी है। लगभग २५ वर्षों पहले यहाँ पर जब मैं भूदान के सम्बन्ध में घूमती थी, तब की और आज की परिस्थिति में अन्तर आया है। इतनी कन्यायें पढ़ने लगी हैं और इस प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम यू० पी० के पूर्वांचल में और ग्रामीण क्षेत्रों में होने लगे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कदम आगे जरूर बढ़ा है। आशा करती हूँ कि इस प्रकार की प्रगति इस अंचल में होती रहेगी। शिक्षक-वर्ग और अभिभावक-वर्ग कन्याओं को इसी प्रकार देखते रहेंगे। मैं कहना चाहती थी कि कन्या का जन्म होना कोई अपराध नहीं है। यह कोई पाप का फल नहीं है कि कन्या का जन्म हो। हम समाज में चाहे पुरुष-देह में हों या स्त्री-देह में हों, पवित्र हैं, वह हरिजन है, आदि जन है, गिरिजन है, ब्राह्मण है अथवा क्षत्रिय है। किसी भी वर्ग में कोई क्यों न हो, बुद्धि में जैसे बहनों के नाम शेष हैं। उनको लेकर हम क्या करेंगे? सत्य चला गया और हम पड़े हुए हैं। हम दूसरी बात याद रखें कि मनुष्य पवित्र है। प्रभु की सन्तान आप की आतमा में है। अपने व्यवहार में इलाके में उनको आप हरिजन कहते हैं, गिरिजन कहते हैं।

कितने ही बुद्धिजीवी-वर्ग, उच्च वर्ग एवं मध्यम वर्ग के लोग अस्पृश्यता की बात करते हैं। जब शब्द सुनती हूँ, तो खून खौलने लगता है। उनको निम्न जाति कहते हैं। उनको दूर रखते हैं। इसको कौन बदल सकता है? केवल माँ, चाहे तो बदल सकती है। हमारे हृदय में ममता और त्याग जल्दी उत्पन्न हो सकते हैं, देश के सवालों को उतनी ही जल्दो हलकर सकते हैं। जितनी आज सिद्धान्तों की जरूरत नहीं है, उतनी जरूरत है कि करुणा की धारा फूट पड़े। प्यार की गंगा में बह उठें, इसकी जरूरत है। मनुष्य की कमजोरियाँ प्यार की गंगा में बह जायेंगी। यदि देश को प्रतिष्ठापित करना है, तो मनुष्य नाम को पवित्र समझें, अपनी कन्या को पवित्र समझें। हमें निर्भय नागरिक बनना है। पुरुषों के साथ-साथ कंधे से कन्धा मिलाकर कार्य भी करना है और हम डरते रहें! पुरुष रक्षक से भक्षक तब बनता है, जब स्त्री अपने आप को लाचार और असहाय समझती है। यदि उसमें आत्म-विश्वास हो, तो स्त्री-पुरुष का सहजीवन एक मंगलमय सहजीवन हो सकता है। स्त्री-जीवन एक लावण्यता, सहजता का जीवन है। वे समाज को प्यार का संगम दें, सेवा करने की शक्ति दें। पुरुष के पराक्रम और स्त्री की समर्पण-शक्ति से मिलकर समाज बनेगा।

स्त्री पुरुषों के साथ काम करने के लिए समर्थ बने, लेकिन उनकी नकल न करे। वह असली नारी भी नहीं रहेगी और नकली पुरुष भी नहीं बन पायेगी। दोनों तरफ से हम चले जायेंगे। इसलिए नारी बनने में जो गौरव है, गरिमा है, उसको कभी न भूलिये। उससे कभी शर्म मत कीजिए। आज पढ़ी-लिखी बहनों में कुछ शर्म है। पता नहीं कहाँ से ले आयी हैं शर्म को? अमेरिका में 'वीमेन्स लिबरेशन एसोसियेशन' ने मुझे अपने समारोह में बुलाया। वहाँ संयुक्त राष्ट्र के सभी क्षेत्रों से महिलायें और बहनें आयी थीं। मैंने कहा—देखिए! आपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे बुला तो लिया है, लेकिन जब-जब मैंने अमेरिका में पाँव रखा है, हमें अमेरिका में नारी कहीं नजर नहीं आयी। किसके लिए आप मुक्ति चाहती हैं? आप की नारी की क्या रचना है, जिसको आप चाहती हैं? यहाँ तो सब पुरुषों की नकल करने वाले नकली पुरुष दिखाई देते हैं। नारी के दर्शन नहीं होते। तो यह नारी-मुक्ति का आन्दोलन क्या है? मैं एक वाक्य में अपनी कथा आप से कहती हूँ कि बहनों को नकल नहीं करना है। जो असल चीज है, जिसे सीखना चाहिए, उसे ही सीखें। यदि उसकी नकल करते हैं, जिसके सत्त्व नहीं है, तो नकल करने से सब चला जाता है। अपने सत्य की, अपनी अस्मिता की, नारी की एक भूमिका है। परिवार में, देश में उसके पास देने के लिए बहुत कुछ हैं। वह पढ़े-लिखे और समाज का नागरिक भी बने, लेकिन अपना सत्त्व देने के लिए न बने,यह चीज मुझे आप से कहनी थी।

भ्रष्टाचार को बन्द करने की चाभी अपने हाथ में है। व्यसन-मुक्ति की चाभी हमारे हाथों में है। हम कहें कि हमारे घर में कोई शराब पी करके रहेगा, तो उस दिन उस व्यक्ति के लिए रसोई नहीं बनेगी—चाहे पिता हो, पुत्र हों या पति हों। उनके साथ घर के सभी लोग उपवास करें। बच्चों को भले ही रसोई बनाकर खिला दें। तो इस प्रकार तप करें, त्याग करें, सत्याग्रह करें, तभी सुधार हो सकता है। देखो, हमारे पूर्वज तो कहते थे कि हम जेलों में चले गये, लाठियाँ खायीं, गोलियाँ भी अपने सीने में सहीं ; अब तो सत्याग्रह करने का क्षेत्र परिवार है। जेल में नहीं जाना है। बिना लाठी-गोली खाये और कारागार में गये, काम करने का मौका है। चार महीने लगे उस मुहल्ले में, लेकिन शराबबन्दी हो गयी, क्योंकि कितने दिन तक पुरुष बाहर जाकर खाना खायेगा? इसके लिए पैसे कहाँ से लायेगा? एक दिन, दो दिन, चार दिन, उनकी मार खाकर, उपवास कर लेंगी, तो काम बनेगा। तप में मेरी श्रद्धा है। यह तप का फल, त्याग का फल है।

यह भारत-भूमि नई है, आजादी के बाद। इसको याद दिलाने के लिए महात्मागाँधी जी नहीं रहे। इसको सभी के बीच इसलिए कह रही हूँ कि व्यसन को बन्द करने की चाभी हमारे पास है, क्योंकि हमारे हाथ में चूल्हा हैं। जिसके हाथ में चूल्हा है, जिसके हाथ में अन्नपूर्णा बसी हुई हैं, वह व्यसनमुक्ति करा सकती है; भ्रष्टाचार को समाप्त करा सकती है। यदि माँ घर में पूछने लगे बेटा, अरे तू तो ४०० रुपये के ४०० रुपया घर लाता है। उसका बेटा तो ४०० सौ रुपया वेतन पाता है—लेकिन ८०० सौ और घर लाता है। तू कुछ नहीं लाता है। वह जो ऊपरी पैसा है, माँ पूछती है, पत्नी पूछती है वे तो गहने बनवाकर लाते हैं, आप क्यों नहीं लाते, तो वे भी तैश में आकर सोचते हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि हम भी कुछ करके दिखा दें। अपने घर पर गहने भी लायेंगे और पैसे भी लायेंगे, क्योंकि जितने पाप वे करते हैं, अपराध करते हैं, जितने नैतिक मूल्यों के हनन करते हैं, वे घर की स्त्रियों के नाम से करते हैं। कहते हैं कि हमको कुछ नहीं चाहिए, हम तो घर की औरतों के नाते करते हैं।

रास्ता बन्द कर दीजिए। उनको बहाना बनाने का रास्ता मत दीजिए और कहिए कि हम उपवास करके रहेंगी। ईमानदारी से आप कीजिए। हम आपके पाप की कमाई नहीं चाहती। इस प्रकार से सत्याग्रह, तप, करने वाली बहनें यदि देश में बनें, तो कार्य हो सकता है। देश में वातावरण हताशा और निराशा का है। पता नहीं, कैसे शिक्षित-अशिक्षित लोग, शहरवाले, गाँववाले लोग निराशा में फँस गये हैं? जैसे कभी भारत में संकट ही न देखा हो, जैसे कोई प्रतिकूल परिस्थितियाँ न देखी हों। क्या यह देश बच्चा है? यह तो सनातन देश है। ऐसे तो बहुत उतार-चढ़ाव देखे हैं। हम सभी बहनों का यह काम है कि इस हताशा और निराशा के वातावरण में आशा की किरण बन जाँय, इस अशोभनीय वातावरण में उद्धार का एक आधार बन जाँय। आप सबने हमें ममता दी। इतने कार्यक्रम के बाद भी आप बैठीं। आप सबसे मैंने दो बातें कर लीं। आप सबको हृदय से धन्यवाद देती हुई मैं आप से आज्ञा चाहती हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi